Text Dark And Light Within The Book Only

UNIVERSAL LIBRARY

OU_182359

UNIVERSAL LIBRARY

गान्धारी

(पौराणिक नाटक)

लेखक

आचार्य चतुरसेन

१९५[illegible]

भूमिका

यह नाटक खास तौर पर भूषण, विद्याविनोदिनी तथा नौवीं: दसवीं कक्षा के छात्र-छात्राओं के लिये लिखा गया है। भाव भाषा और विषय की काट-छाँट और चुनाव सब. इसी दृष्टिकोण से किया गया है।

कथा भूमिका महाभारत है। और हमने इस नाटक में भास के कुछ नाटकों की तथा वेणी संहार की छाया का भी रस वर्द्धन के लिये उपयोग किया है, कुछ काल्पनिक वर्णन भी है।

आशा है, छात्र छात्राएँ इसके द्वारा भाषा ज्ञान के साथ र भारतीय इतिहास का थोड़ा आनन्द प्राप्त करेंगे।

—चतुरसेन

ज्ञानधाम
दिल्ली शाहदरा
ता० २५–५–५१

प्रथम संस्करण
१०००

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक:—
भुवनेश्वर दयाल अग्रवाल
बी. एस. सी.
दयाल प्रेस, आगरा।

॥ नाटक के पात्र ॥

स्त्री पात्र

सत्यवती	कुरुवंश की राजमाता।
गान्धारी	धृतराष्ट्र की रानी और कौरवों की माता।
कुन्ती	पाण्डवों की माता।
द्रौपदी	पाण्डवों की पत्नी।
हिडम्बा	भीमसेन की राक्षस पत्नी।
	ब्राह्मणी, सखी, दासियाँ, नर्तकियाँ, आदि।

पुरुष पात्र

भीष्म	कुरुवंश के पितामह।
धृतराष्ट्र	कुरुजाङ्गल के राजा।
दुर्योधन दुःशासन तथा अन्य धृतराष्ट्र के पुत्र	कौरव।
कर्ण	(कुन्तीपुत्र,) अधिरथ सारथी का पोष्य पुत्र।
शकुनी	दुर्योधन का मामा।
व्यास	महर्षि।
विदुर	कुरुवंश के दासी पुत्र।
अधिरथ	कर्ण का पालक पिता।
कृष्ण	यादव, अर्जुन सारथी।
कणिक	एक राजनीतिज्ञ ब्राह्मण।
पाण्डु	पाण्डवों का पिता।
द्रोण	कुरुकुल के शस्त्रगुरु।
कृपाचार्य	द्रोण के साले महारथी।

युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल सहदेव	पाण्डव ।
शौनक	ऋषि ।
घटोत्कच	भीम का राक्षस पुत्र ।
धौम्य	पाण्डवों के पुरोहित ।
पुरोचन	कौरवों का कपट मन्त्री ।
कंक	छद्मवेषी युधिष्ठिर ।
बृहन्नला	छद्मवेषी अर्जुन ।
गोनित्रक	ग्वाला ।
विराटेश्वर	विराट का राजा ।
उत्तर	विराट राजकुमार ।
अभिमन्यु	अर्जुन पुत्र ।
बलराम	कृष्ण के बड़े भाई ।
द्रुपद	पांचाल के राजा ।
अश्वत्थामा	द्रोण पुत्र ।
सुन्दरक	कर्ण का मन्त्री ।
संजय	एक कौरव राजपुरुष ।

अंक पहला

दृश्य–पहला

(स्थान—गान्धार के राजमहालय के अन्तःपुर का क्रीड़ोद्यान ; समय—प्रातःकाल ; दो चेटिकाएँ कुसुम चयन कर रही हैं, एक का नाम मंदाकिनी है दूसरी का मधुमालती मधुमालती एक गान गाती है ।)

गीत भैरवी

आज कुइलिया बोली ।
अनुरागी फूलों से आली भरलो अपनी झोली ।
फूट पड़ीं अनबोली कलियाँ कुछ अँखियाँ अधखोली ॥
झुकझूमन हिल डुल अलि गिन से ये कर रहीं ठिठोली ।
फिर नहीं मिलि हैं सखि मनमोहनि ये घड़ियाँ अनमोली ॥
आज कुइलिया बोली ।

मंदाकिनी—अरी, जल्दी कर जल्दी, राजनन्दिनी की मदन पूजा का समय हो गया, अभी हमें आम्रमंजरी लेने भी जाना है ।

मधुमालती—तो तू जाकर आर्य माधव से कह दे-कि आम्रमंजरी किसी दास से मंगा दें, तब तक मैं थोड़े से वकुलपुष्प और एकत्रित करलूँ ।

मंदाकिनी—अच्छा, मैं जाती हूँ । ये नीलोत्पल तू रख, और लतिका से कह कि झटपट माला गूँथ दे, नहीं तो राजकुमारी को विलम्ब हो जायगा ।

(नीहारिका आती है)

नीहारिका—चेटिकाओं में यहाँ कौन है ?

चेटिकाएँ—हम हैं हज्जे।

नीहारिका—तुम्हारा कल्याण हो, यह आम्रमञ्जरी आर्य माधव ने कुमारी गान्धार नन्दिनी की मदन पूजा के लिये भेजी है। और यह गन्धमाल्य कुलपुरोहित ने भेजकर कहा है—कि वे देवमित्र महाराज सुबल को मन्त्रपूत गन्धमाल्य देकर अभी आ रहे हैं, यह राज नन्दिनी से निवेदन कर दो।

मधुमालती—तो ला दे आम्रमञ्जरी, मैं अभी राजनन्दिनी से जाकर निवेदन करती हूँ।

(नेपथ्य में)

अरी सखियों, यह भौंरा,

मंदाकिनी—अरे, राजकुमारी पुष्करिणी तीर पर किसी दुष्ट भौंरे से पीड़ित हो रही हैं!

मधुमालती—तो चलो सखी; देखें क्या बात है।

(राजकुमारी आती है)

तीनों दासियाँ—राजनन्दिनी प्रसन्न हो। क्या दुष्ट भौंरे ने कुमारी को पीड़ित किया ?

राजकुमारी—अरी देख, वह उस भौंरी को उस कमल पर बैठ कर मकरन्द पान नहीं करने देता। वह जहाँ-जहाँ पुष्प के निकट जाती है। वहीं-वहीं पहुँच कर घू घू करने लगता है।

मंदाकिनी—देवी, यह तो मधु ऋतु का प्रभाव ही है: फिर भौंरे का स्वभाव ? वह मधुलोभी तो है ही।

राजकुमारी—ऐसा भी लोभ क्या ? अरे, भाई शकुनी इधर ही आ रहे हैं।

(शकुनी आते हैं)

शकुनी—बहिन, अन्तःपुर में चलो, वहाँ तुम्हारा प्रयोजन है।

राजकुमारी—क्या माता की आज्ञा है ?

शकुनी—पिता जी की भी। तुमने सुना—कुरुजाङ्गल से दूत आये हैं।

राजकुमारी—(कुछ लजाकर) तो मैं अभी पूजन समाप्त करके आ रही हूँ। पुरोहित जी की प्रतीक्षा है।

शकुनी—मैं उन्हें भिजवाता हूँ। तुम शीघ्रता करना।

राजकुमारी—जैसी आज्ञा।

(शकुनी जाते हैं)

दृश्य दूसरा

(स्थान—हस्तिनापुर का राजप्रासाद। समय—प्रातःकाल।
मन्त्रणा गृह में सत्यवती, भीष्म, धृतराष्ट्र,
पाण्डु और विदुर बैठे हैं।)

भीष्म—हमारा कुरुकुल श्रेष्ठ गुणों के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है, इसी से यह समुद्र की भाँति बढ़ रहा है। इस प्रतापी कुरुवंश के सभी धर्मात्मा राजाओं ने धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करके पृथ्वी के सभी राजाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इस वंश को नष्ट होने से बचाने के लिये मैंने

तथा राजमाता सत्यवती ने महात्मा वेदव्यास की सहायता से वंश चलाने का उपाय किया। और अब तक इन्हीं राजमाता की सहायता से शासन द्वारा धर्म चक्र प्रवर्तन किया। अब तुम समर्थ हो गये, अब इस महामहिम वंश की वृद्धि का फिर समय आ गया है; पुत्रों! अपने यशस्वी वंश की वृद्धि करो, और पृथ्वी पर धर्म राज्य स्थापित करके लोकोत्तर सम्पदा का उपभोग करो।

सत्यवती—पुत्रों! महाव्रती शान्तनव देवव्रत ने जो कुछ कहा, वह यथार्थ है। जीवन एक धन है तथा वह सर्वोपरि है। पुत्रों! यह हमारा कुरुकुल जिसमें कभी हीनता का आगमन हो, वही तुम करो। इसी से तुम्हारे पूर्व पुरुषों का तर्पण होगा।

भीष्म—राजा को चाहिए कि वह सूर्य के समान ग्रहण और त्याग करे। जैसे सूर्य पृथ्वी के रस को अपनी किरणों से शोषण करता है और फिर पृथ्वी पर रस वर्षण करके वसुन्धरा को आप्यायित करता है, उसी भांति राजा को भी चाहिए। पुत्रों! जीवन का प्रवाह अनन्त है। मृत्यु उसे समाप्त नहीं कर सकती, अपितु नवीनता प्रदान करती है। इसी से यशस्वी पुरुष लघु दृष्टि नहीं रखते, वे अनन्त जीवन को लक्ष्य करके महान् कार्य करते रहते हैं। सो पुत्रों, तुम महान् वंश के धुरीण नर रत्न हो, जीवन को अधिक से अधिक मूल्यवान् बनाओ। मृत्यु की बाधा को मत देखो, अलिप्त होकर राज-सम्पदा का भोग करो तथा ग्रहण और त्याग में समान रूप से अनासक्त रहो।

विदुर—पितामह, आप ही हमारे माता पिता और स्वामी हैं। आप ही हमारे परमगुरु हैं। इससे जैसे इस कुल की

वृद्धि हो वही आदेश हमें दीजिए। हम आपकी तथा माता की आज्ञा का सदैव पालन करेंगे।

भीष्म—तो पुत्र, यह महान वंश आगे भी समुद्र की भाँति जैसे बढ़ाया जा सके वही करो।

सत्यवती—पुत्र देवव्रत, इस विषय में तुमसे अधिक कौन सोच सकता है। तुम महाबाहु, यशस्वी वीर पुरुष हो। जैसे तुमने अपने भाइयों के लिये श्रेष्ठ राज कन्याएं अपने बाहुबल से प्राप्त की थीं, उसी भाँति इन अपने पुत्रों के लिये भी करो। और, जिस कुल के रक्षक तुम जैसे महाप्रतिज्ञ, अजय योद्धा हैं कौन उसे अपनी कन्या देकर कृतकृत्य न होगा?

भीष्म—माता, पराक्रम प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है। प्रथम जो पराक्रम प्रकट हो चुका है—भूमण्डल के नरपति उसके आतङ्क से अभी तक अभिभूत हैं, आपके संकेत भर की देर है श्रेष्ठ कुलों के राजा लोग अपनी कन्याएँ प्रसन्नता से कौरव कुल को देंगे।

सत्यवती—धन्य पुत्र, ऐसा ही तुम्हारा प्रताप है। तो कहो, इस विषय में तुमने क्या करना विचारा है।

भीष्म—माता, यदुवंशी सूरसेन, गान्धार राज सुबल, और मद्रपति की रूप गुण सम्पन्ना विवाह योग्य कन्याएं हैं। ये तीनों ही कुल हमारे योग्य और प्रसिद्ध हैं। उत्तम भी हैं। मैंने इन पुत्रों के लिये इन तीनों देशों में दूत भेजे थे।

सत्यवती—उसका क्या परिणाम हुआ पुत्र?

भीष्म—मैंने गान्धार नन्दिनी को ज्येष्ठ कुमार धृतराष्ट्र के लिए माँगा था, कुमार प्रज्ञाचक्षु हैं इस विचार से सुबल राजा ने संकोच किया था, परन्तु पीछे जब मेरे दूत ने बताया कि

यदि वे अपनी कन्या को कुरुराजमहिषी पद पर आरूढ़ करेंगे तो वह विश्वविख्यात कुरुवंश की राजमाता कहावेंगी, और यदि आप निषेध करेंगे तो कुरुवंश का प्रतिनिधि यह सहन नहीं करेगा, वह राजकुमारी का बलात् हरण करेगा।

सत्यवती—निस्संदेह पुत्र, उस नगण्य राजा की यह स्पर्द्धा असहनीय है। पुत्र देवव्रत, देखती हूँ तुम्हें फिर अपना धनुष ग्रहण करना होगा।

भीष्म—नहीं माता, गान्धारपति ने अन्ततः कन्या देना स्वीकार कर लिया है।

सत्यवती—अच्छा ही किया उसने पुत्र, अपने को नष्ट होने से बचा लिया। परन्तु पुत्र देवव्रत, कुरुराज धृतराष्ट्र उस राजा की पुत्री को ब्याहने उसके घर नहीं जाएगा। गान्धार-पति को कन्या का डोला देना होगा।

भीष्म—यही किया गया है माता, गान्धार युवराज शकुनी राजनन्दिनी को लेकर गान्धार से चल दिये हैं, गान्धार राज्य के सब आमात्य और पुरोहित भी साथ हैं।

सत्यवती—साधु, पुत्र साधु! गान्धार पुत्री कुरुवंश की पट्ट महारानी का हस्तिनापुर में भव्य स्वागत होना चाहिए।

भीष्म—ऐसी ही आज्ञा दी गई है माता।

सत्यवती—यह तो हुआ। अब अन्य राजकुमारों के लिये क्या विचार है?

भीष्म—धृतराष्ट्र के विवाह के बाद वह भी हो जायगा। यदुनाथ शूरसेन ने स्वीकृति दे दी है। केवल मद्रराज शुल्क माँगता है, वह उसके कुल की परिपाटी है।

सत्यवती—तो उसे शतकोटि स्वर्णभार दो पुत्र, उसकी कुल मर्यादा की अवश्य रक्षा होनी चाहिए।

भीष्म—ऐसा ही होगा माता। आयुष्मान् विदुर के योग्य राजा देवक के यहाँ एक दिव्य कन्या है। राजा देवक ने उसे रत्नभार भूषिता करके देने का संकल्प प्रकट किया है।

सत्यवती—तो पुत्र, शुभस्य शीघ्रम।

भीष्म—जैसी माता की आज्ञा।

सत्यवती—पुत्र, आयुष्य बढ़े, यश बढ़े, कुल बढ़े।

(जाती है)

सब जाते हैं

दृश्य तीसरा

(स्थान—पुरुषपुर का राजप्रासाद, गान्धारी का कक्ष। समय—प्रातःकाल। सखियाँ मङ्गल गान करती हुई गान्धार नन्दिनी का शृङ्गार कर रही हैं। शृङ्गार वाला गान्धार कुमारी विविध रत्नाभरणों से सुसज्जित होकर दिव्याङ्गना सी भासित हो रही है। सखियाँ गाती हैं)

आज कर शृङ्गार री सखि, आज कर शृङ्गार।
तू मिलन की आस कर सखि जा वहाँ पा प्यार॥
हम विरह की पीर से अपना करें अभिसार।
अश्रुजल लेजा हमारा नाथ में उपहार॥
बोल अब गुंजन करूं औ अब न तेरा शृङ्गार।
आज कर शृङ्गार री सखि, आज कर शृङ्गार॥

पहिली—अरी सखियों, आओ एक बार आँख भर कर सुकुमारी राज नन्दिनी को देख लो, फिर काहे को यह दिव्य रूप देखने को मिलेगा।

दूसरी—अरे, तो हम जीवित कैसे रहेंगी? कुमारी के बिना तो हमारा संसार ही सूना हो जायगा।

तीसरी—ऐसी बात न करो सखी, यह मङ्गल काल है।

चौथी—ठीक है, जबतक इन आँखों के सम्मुख प्रीति की मूर्ति राजकुमारी हैं तबतक हँसो, गाओ सखी, वियोग व्यथा की बातें कहने सुनने को जन्मभर का समय है।

पहिली—सखी केसरी और वासन्ती ही धन्य हैं जो देवी के साथ कुरुजाङ्गल जा रही हैं।

दूसरी—अरी सुना है, कुरुजाङ्गल सब देशों में श्रेष्ठ है, वहाँ सब ऋतु समय पर अपना प्रभाव दिखाती हैं। समय पर वर्षा होती है वहां कभी दुष्काल नहीं होता सदैव वृक्षों में फल लदे रहते हैं।

दूसरी—क्यों नहीं, सुराज्य के विस्तार के कारण वहाँ न चोर है, न कुकर्मी, न कोई ऐसा है जो अग्निहोत्र न करता हो, न कोई झूठा है न दरिद्र। वहाँ सदा घर २ मङ्गल उत्सव होते रहते हैं।

तीसरी—तब तो वहाँ सतयुग का समय बीत रहा है।

चौथा—केवल राजधानी ही में नहीं, सम्पूर्ण देश में।

पहिली—यह सब परन्तप महात्मा भीष्म के धर्म शासन का प्रताप है।

दूसरी—क्यों नहीं। धर्मज्ञों में भीष्म, माताओं में सत्यवती,

देशों में कुरुजाङ्गल, और नगरों में हस्तिनापुर पृथ्वी पर सर्व श्रेष्ठ हैं।

तीसरी—सुनते हैं, महाबली युवराज धृतराष्ट्र संसार में सर्वाधिक बल सम्पन्न हैं, उनकी वज्रदेह अभङ्ग और अजेय है।

चौथी—इस में क्या सन्देह, जैसे पृथ्वी के सब मनुष्यों में वे अतिवीर, महाबली हैं, इसी प्रकार सुदर्शन राजकुमार पाण्डु अप्रतिरथ धनुर्धर हैं।

पहिली—और विदुर के समान धर्मज्ञ और राजनीति विशारद आज त्रैलोक्य में दूसरा नहीं है। वे साक्षात धर्म-राज हैं।

दूसरी—बड़े भाग्य हैं कि ऐसे यशस्वी कुल में हम सम्बन्धित होकर प्रतिष्ठित हुए हैं।

तीसरी—तो सखियो, आओ मङ्गल गान करें।

राजकुमारी—ठहरो, सखियो, सब कोई मेरे सामने मुहूर्त भर खड़ी रहो।

सब—किस लिए राजकुमारी?

राजकुमारी—आँख भरकर अन्तिमबार तुम्हें देखलूं। मेरी प्राण सखियो।

सब—अंतिमबार क्यों?

राजकुमारी—धर्म और कर्तव्य की मर्यादा के कारण सखियो।

एक—कैसा धर्म? प्रिय कुमारी?

राजकुमारी—जो हमारे कुल की प्रतिष्ठा है।

दूसरी—तो फिर?

राजकुमारी—सब कोई मेरे सम्मुख आओ।

(सब सामने आ खड़ी होती है। राजकुमारी डबडबाई आँखों से सब को देखती हैं।)

आह, तुम सब प्रेम की पुतलियाँ कितनी सुन्दर हो। संसार तुम्हारे रूप से उज्ज्वल हो रहा है। किन्तु, बस। अब देख चुकी।

सब—देख चुकी?

राजकुमारी—देख चुकी।

सब—तो अब?

राजकुमारी—एक पट्टी लाओ सखिओं।

सब—(आश्चर्य मुद्रा में) पट्टी?

राजकुमारी—हाँ सखिओं।

सब—किसलिए राजकुमारी?

राजकुमारी—धर्म और मर्यादा के अनुशीलन के लिए।

एक सखी—(देकर) यह पट्टी है राजकुमारी।

राजकुमारी—तो प्रिय सखी, इसे मेरी आँखों पर बाँध दो

सब—यह क्या?

राजकुमारी—धर्म और मर्यादा के अनुशीलन के लिये। तुमने समझा नहीं सखिओ, मैं कुरुजाङ्गल जा रही हूँ।

एक—तो इससे क्या?

राजकुमारी—अब कुरुजाङ्गल की राज महिषी को विश्व के सौन्दर्य को देखने का अधिकार नहीं रहा। गान्धार की पुत्रियाँ पतिव्रत और अनुशीलन की मर्यादा में पृथ्वी पर उसी

प्रकार अप्रतिम हैं जिस प्रकार शौर्य और धर्म में कुरुकुल के धर्मात्मा राजपुत्र।

दूसरी—अरे, अब समझी। कुरुओं के ज्येष्ठ प्रज्ञाचक्षु हैं इसी से।

राजकुमारी—जब वे विश्व को चर्म चक्षुओं से देखने में अक्षम हैं, तो मैं भी उसका आनन्द लाभ लेने की अधिकारिणी नहीं। स्त्री पति की अर्धाङ्गिनी है, वह पति के सुख दुःख, जीवन, मरण सभी में आधे की भागीदार है। सखी, वह पट्टी मेरे नेत्रों पर बाँध दो।

एक सखी—(पट्टी बाँधती हुई) हाय, ये नीलारविन्द के समान दर्शनीय नेत्र—(आँखों में आँसू भर लाती है)

राजकुमारी—आह, धन्य हुई सखी, आज से मेरी अन्तस्थ दृष्टि हुई। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि आजीवन मैं विश्व को नहीं देखूँगी। (राजा सुबल आते हैं)

सुबल—धन्य पुत्री, धन्य। तो मैं तुझे वर देता हूँ कि तेरी दृष्टि वज्र दृष्टि हो जाय।

राजकुमारी—पिता जी, अभिवादन करती हूँ।

सुबल—सौभाग्यवती रहो पुत्री, सौ पुत्रों की माता बनो।

(रानी आती है)

रानी—अरी मेरी प्राण दुलारी, तूने यह कठिन व्रत धारण कर लिया? कैसे इसे निबाहेगी?

राजकुमारी—आपके आशीर्वाद से माता! गान्धार की पुत्री कुरुकुल में पातिव्रत और कर्तव्य का एक उदाहरण उपस्थित करेगी।

रानी—लो पुत्री, मैं आशीर्वाद देती हूँ, पतिव्रताओं में

तेरा नाम अग्रगण्य रहेगा। तू मेरी बेटी नहीं· गान्धार राष्ट्र की बेटी है, उत्तर कुरु वंश में तेरी प्रतिष्ठा गान्धारी के नाम से चिरस्थायी रहे यह आशीर्वाद देती हूँ।

राजकुमारी—अनुगृहीत हुई।

(राजकुमार शकुनी आते हैं)

शकुनी—बस, यात्रा की सम्पूर्ण सामग्री तैयार है, अब विलम्ब नहीं करना चाहिए।

राजा—पुत्र शकुनी, तुमने उपानय की सामग्री तो देख भाल ली। हस्तिनापुर में गान्धार का उपानय और यौतुक दातव्य ऐसा जाना चाहिए, जिसका कुरु जाङ्गल में उदाहरण उपस्थित रहे।

शकुनी—महाराज, पृथ्वी के बड़े-बड़े नरपतियों ने बड़े-बड़े दान अपनी पुत्रियों को दिये हैं; किसी की हिर्स करने से क्या लाभ ? फिर भी मणि माणिक्य सुवर्ण और मुक्ता के सात भार, सात सौ काम्बोजी अश्व, सहस्र गाय और सौ रथ निवेदन को सजाए हैं। आगे महाराज प्रमाण हैं।

सुबल—धन्य पुत्र, धन्य। फिर मेरी बेटी पृथ्वी का सबसे बहुमूल्य रत्न है। तो पुत्र, अब विलम्ब क्यों ?

रानी—पुत्री, मेरे हृदय से लग जा, मृग शिशु की भाँति नित्य-नित्य जिसे पाला उसे ही आँखों से दूर करना पड़ रहा है।

(छाती से लगाती है)

कुमारी—अरी सखियों, माता का प्रबन्ध करती रहना।

रानी—अरे, मेरा बिछुड़ा धन फिर कहाँ मिलेगा।

सुबल—यह क्या ? मेरी निर्मम आँखें भी भीजने लगीं।

महारानी, पुत्री अपनी वस्तु नहीं, वह तो धरोहर होती है। पराई वस्तु जिसकी है उसे सौंपना ही पड़ेगा।

(पुरोहित आते हैं)

पुरोहित—यह होमाग्नि है राजकुमारी, अब तुम उसकी परिक्रमा कर लो, मैं स्वस्तिवाचन करता हूँ।

(मन्त्र पाठ करता है कुमारी अग्नि प्रदक्षिणा करती है)

रानी—बेटी, सदा गुरुजनों की सेवा और पति का सम्मान करना। पति से कभी मान मत करना। और सदैव परिजनों को अनुकूल रखना।

कुमारी—अनुगृहीत हुई।

राजा—बेटी, अब कौन इन शुक मयूर, कोर और पक्षियों की सुध लेगा? जिन्हें बिना दाना पानी दिये तू भोजन नहीं करती थी। ये तेरे स्नेह से सींचे हुए लता गुल्म कैसे हरे भरे रहेंगे? किन्तु इन बातों से क्या लाभ? अरी पुत्री, तेरा मार्ग सुख से निर्विघ्न कटे।

कुमारी—अनुगृहीत हुई।

शकुनी—तो चलो बहिन, अब रथ में बैठो।

(सब जाते हैं)

दृश्य—चौथा

(स्थान—हस्तिनापुर का राजमहालय, समय-प्रातःकाल। गान्धार राजपुत्र शकुनी अपनी बहिन गान्धारी तथा साथ में बहुत सा यौतुक लेकर आते हैं। उनके स्वागत के लिये कुरुकुल के सब राजपुरुष और राज परिजन एकत्रित हैं। समस्त राजमहालय ध्वजाओं तथा पताकाओं एवं विविध मङ्गल चिन्हों से सुसज्जित किया गया है)

शकुनी—कुरुकुल के रक्षक परंतप महात्मा देवव्रत भीष्म

की जय हो। यह गान्धार का राजपुत्र शकुनी आपको और कुरुकुल की माता दिव्याङ्गना सत्यवती को अभिवादन करके निवेदन करता है, कि गान्धार अधिपति धर्मात्मा मेरे पिता महाराज सुबल ने मुझे आपकी सेवा में अपनी प्रिय भगिनी देव-पुत्र अर्पित करने को भेजा है। महाराज जैसे आपका कुरुकुल जगत् विख्यात है उसी प्रकार हमारा गान्धार कुल भी प्राचीन और विख्यात है। इसी से मेरे प्रतापी पिता महाराज सुबल ने अपनी प्रिय पुत्री गान्धारी महाराज धृतराष्ट्र के लिये अर्पित की है। और साथ में यत्किञ्चित यौतुक भी भेजा है। जिसमें सात खर्व स्वर्ण और सात सौ सिन्धु देश के महार्घ अश्व जिनमें एक सौ तितिर के रंग के अलौकिक तेज वाले अश्व भी हैं। सहस्र गाय, १०० रथ तथा बहुत से बहुमूल्य शस्त्र-वस्त्र और रत्न हैं। आप इन्हें ग्रहण कर हमें कृतार्थ कीजिए। और धर्मविधि से मेरी बहिन गान्धारी को जो धर्मनीति और अर्थ नीति की विद्या में वैसी ही अलौकिक है जैसी रूप और शील में—विवाह करके हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाइये।

भीष्म—साधु, गान्धार युवराज साधु। तुम्हारा हम हस्तिनापुर में स्वागत करते हैं और तुम्हारी बहिन गान्धार नंदिनी को कुरुकुल की गृहलक्ष्मी की भाँति स्वीकार करते हैं। हम यह भी आशा करते हैं कि इन दोनों कुलों का प्रेम और मिश्रण सब भाँति भारत के लिये शुभ होगा।

शकुनी—अनुगृहीत हुआ।

सत्यवती—पुत्र शकुनी, गान्धार राजबाला को अपनी पुत्रवधू बनाकर मैं अति प्रसन्न हुई हूँ। आओ पुत्री, मेरे हृदय से लगो। आज से यह समस्त कुरुजाङ्गल तुम्हारा हुआ।

शकुनी—अनुगृहीत हुआ, बहिन, ये दिव्यरूपा राजमाता सत्यवती हैं। इन्हें अभिवादन करो।

गान्धारी—अभिवादन करती हूँ आर्ये।

सत्यवती—पुत्रि, सौ पुत्रों की माता होओ।

गान्धारी—अनुगृहीत हुई।

शकुनी—ये क्षत्रियाओं के प्रयोक्ता कुरुकुल के प्रतापी संरक्षक आर्य देवव्रत भीष्म हैं इन्हें अभिवादन करो।

गान्धारी—आर्य, अभिवादन करती हूँ।

भीष्म—अखण्ड सौभाग्यवती रहो पुत्रि।

गान्धारी—अनुगृहीत हुई।

सत्यवती—अयि नियुक्तिके, तुम वधू के सोलह प्रकार के मङ्गलोपचार करो, और वेद पाठी ब्राह्मणों से कहो—कि वे पवित्र तीर्थ जल का अभिषेक करके वधू को आशीर्वाद दें।

नियुक्तिका—जैसी आज्ञा।

(जाती है)

सत्यवती—पुत्र देवव्रत, गान्धार राजपुत्र का यथोचित आतिथ्य हो। और सब आप्त जनों को बुलाकर पुत्र धृतराष्ट्र के विवाह समारोह का आयोजन करो।

भीष्म—जैसी आज्ञा माता।

सत्यवती—नगर और सब जनपद में मंगल गान और नृत्योत्सव हों ऐसी आज्ञा प्रचार कर दो।

भीष्म—ऐसा ही होगा।

सत्यवती—पतिव्रताओं में श्रेष्ठ गान्धार राजकुमारी, तुमने जो प्रथम ही अपना नेत्र शृङ्गार कर लिया है इसी से

लोक में तुम्हारा नाम पतिव्रताओं में अग्रगण्य रहेगा। आओ, मेरे साथ, अन्तःपुर में प्रवेश करो।

(ब्राह्मण आते हैं)

(वे मन्त्र पाठ करते हैं, कुमारियाँ और सौभाग्यवतियाँ पुष्प लाजा वर्षा करती है। सत्यवती गान्धारी का हाथ पकड़ कर अन्तःपुर में ले जाती है। भीष्म शकुनी को अपने साथ ले जाते हैं)

दृश्य पाँचवाँ

(स्थान—हस्तिनापुर के अन्तःपुर का उद्यान, समय सन्ध्या काल। महाराज धृतराष्ट्र और देवी गान्धारी उद्यान की स्फटिक पीठ पर बैठे हैं। अन्तः उपचारिकाएँ यथास्थान सेवा में उपस्थित हैं। दो मोर्छल झल रही है। ताम्बूल वाहिनी ताम्बूल लिये उपस्थित हैं। चार गायिकायें वीणा मृदंग मिरज आदि विविध वाद्य लिये उपस्थित हैं, संगीत हो रहा है)

सखियाँ गा रही हैं।

राग काफी

मंगल मूरति बाल।
नवल वसंत नवल मलयानिल—नव कुसुमित नव डाल,
कूजत कोकिल नवल रसालन—गुञ्जत अलि गुनमाल।
नव तारुण्य अलस मद पूरित, नव उमंग नव गात,
नवल प्रेम नव सुरत समागम, सुखमय सुमुखि सुहात।
मंगल मूरति बाल।

गान्धारी—साधु, साधु, प्रिय सखियां, यह मणिहार लो।

धृतराष्ट्र—क्या गांधारनन्दिनी को कुरुजाङ्गल की गायिकाओं का सान्ध्य निवेदन प्रिय हुआ ?

गान्धारी—बहुत प्रिय महाराज, जैसे कोमल इनके स्वर हैं वैसे ही कोमलतर भाव भी हैं।

धृतराष्ट्र—किन्तु देवी की प्रिय सहचरी वह यवनी भी अतिमोहक संगीत की सृष्टि करती है।

गान्धारी—उसने उत्तर कुरु की दैव सम्पदा प्राप्त की है महाराज। स्वयं गन्धर्वराज चित्रसेन ने उसे संगीत दान दिया है।

धृतराष्ट्र—किन्तु प्रिये गान्धार पुत्री, सखियों ने जिस वासन्ती सन्ध्या की शोभा का वर्णन अपने संगीत में किया है, उसे क्या हम नेत्रहीन यत्किञ्चित हृदयङ्गम कर सकते हैं ? हन्त प्रिये, मुझ भाग्यहीन के कारण तुम जैसी कमलाक्षी भी उस शोभा की सुषमा के रूप दर्शन से वंचित हो गई हो।

गान्धारी—ऐसा क्यों महाराज, रूपदर्शन क्या नेत्रों ही का विषय है ?

धृतराष्ट्र—नेत्र उसके प्रधान उपादान हैं प्रिये।

गान्धारी—प्रियदर्शन महाराज, नेत्रों के द्वारा जो रूप दर्शन होता है वह कितना अस्थाई और विनश्वर होता है। यही तो सर्व धर्म के ज्ञाता महाराज को विदित नहीं है। प्रज्ञाचक्षुओं द्वारा ही अविनश्वर रूप दर्शन होता है।

धृतराष्ट्र—देवी के इस रूप दर्शन का शाश्वत स्वरूप क्या है ?

गान्धारी—महाराज, प्रति वर्ष वसन्त आता है पतझड़

होता है, फिर नई कोपलें खिलतीं हैं, और प्रकृति हर बार नया परिधान धारण करके जो शाश्वत शोभा विस्तार करती है। उसके शाश्वत रूप को देखने में नेत्र ही सबसे अधिक बाधक हैं। वे तो उसके लाक्षणिक विकारों को उसके आदि अन्त का रूप देते हैं। नेत्रों द्वारा रूप दर्शन करके हम कहते हैं वसन्त बीत गया, परन्तु प्रज्ञाचक्षु के द्वारा वसन्त का जो शाश्वत रूप दीख पड़ता है, वह कभी नहीं बीतता। कभी नहीं समाप्त होता। वह तो युग युग से प्रवाहित है, और युग युग तक प्रवाहित होता रहेगा।

धृतराष्ट्र—तो प्रिये, लोग मुझे व्यर्थ ही प्रज्ञाचक्षु कहते हैं। मैं तो उस शाश्वत रूप दर्शन में नितान्त अक्षम एक निरीह अन्धा पुरुष हूँ, प्रज्ञानेत्र तो तुम्हीं को प्राप्त हैं प्रिये, जिनके द्वारा तुम विश्व के शाश्वत सौन्दर्य को ऐसे अक्षय रूप में देख पा सकती हो।

गान्धारी—यह सब आप ही के अनुग्रह स्पर्श से कुरुश्रेष्ठ! यह किङ्करी यदि आप की अर्धाङ्गिनी होने का सुयोग न पाती तो नश्वर चर्मचक्षु जो देख पाते वही तो दीख पाता?

धृतराष्ट्र—किन्तु प्रिये, सुना है, विश्व बड़ा सुन्दर है। उसमें अप्रतिम तेजवान सूर्य है। उसका मनोहर प्रकाश है, उस प्रकाश में दीप्तमान सुनील आकाश है, उस आकाश में हीरकमणि के समान देदीप्यमान नक्षत्र हैं। सुधावर्षी सुधाधर है, उसकी रजत सुधा से पुष्पराशि की मधुरता शत सहस्र गुना बढ़ जाती है। दिवाकर के प्रकाश में जब दिन का विस्तार होता है तो विविध रंग के पुष्प, हरे भरे लहलहाते खेत, हिमाच्छादित हिमगिरि शिखर, निर्मल सरोवर में उज्ज्वल उत्फुल्ल कमल दल, उन पर गुञ्जायमान काले भँवर,

और इस सब विश्व सौन्दर्य को सार्थक करने वाली विधुवदनी रूपसी बालाओं की मञ्जुमुखश्री देखने योग्य है। प्रिये, यह सब तो चर्म-चक्षुओं ही का विषय है।

गान्धारी—नहीं वीर बाहु, यदि चर्मचक्षु ही विश्व सौन्दर्य को देख पाने योग्य होते तो फिर उनके सामने विश्व की कुत्साएँ कहाँ से आतीं? महाराज, जैसे चर्मचक्षु स्वयं नश्वर है वैसे ही उनसे जो विश्व सौन्दर्य का आभास अन्तरात्मा को मिलता है, वह भी नश्वर है। वह विश्व सौन्दर्य क्षण में लय-विलय होता रहता है। परन्तु प्रज्ञाचक्षुओं द्वारा जो विश्व रूप अन्तरात्मा ग्रहण करती है, वह शाश्वत, चिरन्तन और अक्षय है। इसलिए, अन्तरात्मा की तृप्ति उसी से होती है।

धृतराष्ट्र—ओह प्रिये, आज अपने आँखों पर पट्टी बाँध कर शाश्वत जगत से नश्वर इन नेत्रविहीनों का सम्बन्ध विच्छेद करके तुम उसी शाश्वत विश्वरूप को देखकर अन्तरात्मा की तृप्ति का अनुभव करती हो।

गान्धारी—निःसन्देह कुरुकुल तिलक! ऐसा ही है।

धृतराष्ट्र—ओ कुलकमल की महारानी, मैं अपनी इन अन्धी आँखों से आज अविज्ञात अनुभव कर रहा हूँ। तुम्हारी इस भावना ने मुझे भी विश्व सौन्दर्य के उस अलौकिक आलोक का एक कण स्पर्श करा दिया है और उसीसे मैं कृतार्थ हो गया हूँ। गान्धार पुत्री, सबकी अपनी आँख पर अभिमान करने वाले सुन्दर [illegible] इस परिपूर्ण [illegible] को तुम अपनी आत्मा से अनुप्राणित करो। प्रिये, कुछ माँगो, इस हस्तिनापुर के महा साम्राज्य में जो कुछ है वह सभी तुम्हारा है प्रिये, फिर भी कुछ माँगो।

गान्धारी—अनुगृहीत हुई। महाराज, यदि आप मुझ पर

प्रसन्न हैं तो मैं यही माँगती हूँ कि महाराज, आप सदा धर्म अर्थ और काम की सिद्धि के मार्ग पर अविचलित रहें, संपत्ति और विपत्ति में कभी विचलित न हों। इससे प्रियदर्शी महाराज, आपका वंश और यश अमर हो जायगा।

धृतराष्ट्र—प्रिये गान्धार कुमारी, तुम धन्य हो। तुम इस अन्धे राजा की राजनीति और धर्मनीति की अवलम्ब यष्टिका हो प्रिये, तुम कुरुकुल की भाग्य लक्ष्मी और पूज्यनीया देवी हो। तुम्हारी जैसी विदुषी और शीलवती पत्नी पाकर जैसे मैं कृतकृत्य हुआ उसी भाँति तुम्हारे भावुक हृदय और मेधावी मस्तिष्क के सहारे से यह वंश भी कृतकृत्य हो यही मेरी कामना है। प्रिये, हम दोनों जीवनपथ पर इसी प्रकार उद्ग्रीव होकर विश्व के आदर्शरूप होकर अन्त तक चलते रहें।

गान्धारी—धन्य महाराज, धन्य कुरुकुलपति, अरी सखी श्वेतभद्रे, आओ महाराज की सेवा में गान्धार पद्धति का नृत्य संगीत निवेदन करो।

भद्रा—जैसी आज्ञा।

(सङ्गिनियां सहित गाती और नृत्य करतीं हैं)

धरा पर वह ज्योति उतरी।
खोल लोचन जगे शतदल,
मलय मारुत हुई सुरभित।
क्षितिज के अंचल तिमिर से,
मुक्त होकर हुए विकसित।
कुहुकनी की तान सुनकर,
डालियाँ झुक झूम कुसुमित।
लगीं सौरभ दान करने,
युगल प्रेमी मिले सस्मित।

दृश्य छठा

(स्थान—हस्तिनापुर का नगर द्वार । समय-प्रातःकाल । एक ओर से दो सैनिकों का और दूसरी ओर से दो नागरिकों का प्रवेश ।)

एक सैनिक—सब कोई सावधान हो जाओ ।

एक नागरिक—किस लिये ?

दूसरा सैनिक—क्या तुम नहीं जानते, महाराज पाण्डु दिग्विजय करके हस्तिनापुर लौट रहे हैं, महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा है कि सब नगर निवासी उन का स्वागत करने नगर द्वार पर उपस्थित हों ।

दू० ना०—तब तो आनन्द ही आनन्द है । महावीर महाराज पाण्डु के हम भी दर्शन करेंगे ।

दू० सै०—दर्शन योग्य के दर्शन करने ही चाहिए । चतुरङ्गिणी सेना को लेकर कुरुकुल श्रेष्ठ महाराज पाण्डु ने सब नरपतियों को सेना सहित परास्त कर दिया । और सब नरपतियों ने महाराज पाण्डु को मनुष्य लोक में एक मात्र श्रेष्ठ वीर स्वीकार कर लिया है । और अब वे भेंट स्वरूप स्वर्ण, रत्न, मणि, मूंगा, मोती, चाँदी, गौ, अश्व, हाथी, ऊँट, भैंस, बकरी, भेड़, कम्बल, मृगछाला आदि सामग्री लेकर उनके आगे २ चल कर आ रहे हैं । जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहां तक रत्नों से लदे छकड़े, गाय, हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड़, आदि ही दीख पड़ रहे हैं ।

एक नागरिक—अच्छा, तब तो हमें शीघ्र महात्मा पाण्डु के दर्शन करके नेत्रों को तृप्त करना चाहिये ।

दूसरा — बुद्धिमान महाराज पाण्डु ने भरतकेतु शान्तनु के नष्टप्राय यश और प्रतिष्ठा को बचाकर अपने कार्यों से और भी उज्ज्वल कर दिया।

एक सैनिक—इसमें क्या संदेह, जिन राजाओं ने पहिले कौरवों के धन और राज्य को दबा लिया था, वे सब अब पाण्डु से हार कर उन्हें कर देने लगे।

दूसरा—अजी, पुरुषसिंह पाण्डु ने अपराधी दशार्ण देश के राजाओं के दर्प को चूर करके बड़ा वीरत्व प्रदर्शित किया।

पहिला सैनिक—और गिरिव्रज के मागध राजा को मार कर उन सब राजाओं को भयमुक्त कर दिया जो उससे सदा भयभीत रहते थे। वहाँ से अनगिनत धन, रत्न, और घोड़े, हाथी, उन्होंने प्राप्त किये हैं।

दूसरा सैनिक—यही नहीं, उन्होंने विदेह, मिथला, काशी, सुह्म और पुण्ड्र देश के राजाओं को बलपूर्वक जीत कर कौरवों की यश वृद्धि की है।

एक नागरिक—तब तो भाई, महाराज पाण्डु ही कुरुकुल के सच्चे महाराज हैं।

दूसरा नागरिक—जिनके ऐसे बाणों ने सब राजाओं को जीत कर कुरुकुल का आज्ञाकारी बना दिया है।

(बाजों का शब्द होता है)

पहिला नागरिक—अरे देखो, चारों ओर तुरही, नगाड़े और शंख बजने लगे। महात्मा भीष्म को आगे करके महाराज धृतराष्ट्र, विदुर, अपने मन्त्रियों और समस्त कौरवों तथा पुरवासियों को संग ले उनके स्वागत को नगर द्वार पर आ रहे हैं।

दूसरा नागरिक—तो चलो भाई, हम भी यह समारोह देख कर नेत्रों को सफल करें।

पहिला नागरिक—चलो फिर चलें।

(सब जाते हैं)

दृश्य सातवाँ

(स्थान—शाल्ववन का एक भाग। समय—मध्यान्ह। महाराज पाण्डु रथ पर सवार धनुष बाण लिये मृगों के झुण्ड के पीछे २ दौड़ रहे हैं)

पाण्डु—(बाण रोक कर) अरे! वह मृग तो यहीं किसी झाड़ी में चक्कर खाकर लोप हो गया।

सूत—महाराज, घोड़े बहुत थक गये हैं। आज्ञा हो तो अब थोड़ा विश्राम कर लिया जाय। इस वन में मृग बहुत मिलेंगे।

पाण्डु—तब उसी विशाल वट वृक्ष के नीचे रथ रोक दो सूत, सामने वह पुष्करिणी है उसके निर्मल जल में खिले हुए पुष्पों की गन्ध से यहां का वायु शीतल और सुरभित हो रहा है।

सूत—जो आज्ञा महाराज।

(रथ रोकता है)

पाण्डु—(रथ से उतर कर) यह तो किन्हीं ऋषि का आश्रम प्रतीत होता है। यह यज्ञ धूम की श्याम रेखा आकाश को उठी

दीख रही है। चारों ओर शांति का राज्य है। दूर से बटुकों के वेदपाठ की ध्वनि भी सुनाई दे रही है।

सूत—ऐसा ही है महाराज।

पाण्डु—अरे! वह देखो, सामने झाड़ी में से वही मृग निकला।

सूत—दो हैं महाराज, कदाचित् एक हरिणी है, दोनों महाराज की उपस्थिति से अज्ञात हैं, आनन्द से वन-विहार कर रहे हैं।

पाण्डु—हरिण बड़ा ही चपल पशु है; उसका लक्ष्य वेध करने में बड़े ही हस्तलाघव की आवश्यकता होती है। किन्तु यह हरिण तो बहुत बड़ा है। वह देखो, कान खड़े करके इधर की ओर देख रहा है।

सूत—उसे हमारी गन्ध मिल गई है महाराज।

पाण्डु—ऐसा ही है। लाओ मेरा धनुष तो दो।

सूत—यह धनुष है महाराज।

पाण्डु—मैं पाँच बाणों से दोनों को अभी मार गिराता हूँ।

(बाण सधान करते हैं)

(नेपथ्य में)

मत मारिये, मत मारिये। ये आश्रम के मृग हैं।

पाण्डु—कौन है यह, जो मुझे मृगया से विरत करता है। क्या यह नहीं जानता, कि मैं कुरुवंशी पाण्डु हूँ।

(बाण छोड़ता है, मृग आहत होकर गिर जाते हैं ऋषि आते हैं)

ऋषि—अनर्थ किया महाराज पाण्डु, तुमने मेरा निषेध करने पर भी आश्रम के मृग का वध कर डाला।

पाण्डु—किन्तु ऋषिवर, मृगया करने का मेरा अधिकार है।

ऋषि—तुम प्रतापी भरतवंश के वंशराज हो। तुमने काम और लोभ के वशीभूत होकर यह दुष्कर्म किया है।

पाण्डु—ऋषिवर, राजालोग शत्रु को मारने में जैसा व्यवहार करते हैं उसी प्रकार मृगया में पशुवध भी करते हैं। फिर, इसके लिये आप मेरा तिरस्कार किस लिये करते हैं!

ऋषि—राजन, आपने धर्मात्मा कुरुवंशी होने पर भी यह निष्ठुर कार्य किया। जब मृग-मृगी वन विहार कर रहे थे तभी दोनों को मार डाला।

पाण्डु—राजा लोग जिस प्रकार शत्रु को सम्मुख देख कर तुरन्त मार डालते हैं उसी प्रकार मृगया में पशु को देखते ही मार डालते हैं, यह तो सनातन धर्म है। इसमें पाप क्या है?

ऋषि—राजन, मनुष्यों की भाँति ये पशु भी जीवन के आनन्द को अनुभव करते हैं फिर ये हरिण कभी किसी का कुछ बिगाड़ते भी नहीं। और ये तो आश्रम के हिरण थे। इन्हें आपने मेरे निषेध करने पर भी मार कर निष्ठुरता की है, इससे मैं किंदम मुनि तुम्हें शाप देता हूँ कि इसी प्रकार वन में आनन्द विहार करते हुए तुम्हारी मृत्यु होगी।

(कमण्डलु से जल छोड़ कर जाते हैं राजा और सूत स्तब्ध रह जाते हैं)

———

दृश्य आठवाँ

(स्थान—हस्तिनापुर का राजमहल। समय प्रातःकाल।
महाराज धृतराष्ट्र शोक मुद्रा में बैठे हैं)
(विदुर आते हैं)

विदुर—तो महाराज ने पहिले ही सुन लिया।

धृतराष्ट्र—सुन लिया। परन्तु तुम भी सुना दो। किस प्रकार प्रियवर्द्धन पाण्डु राज्य से विरक्त हो गये। वे तो वन विहार की आज्ञा लेकर अपनी दोनों रानियों सहित शालवन गये थे।

विदुर—हाँ महाराज, वहाँ विहार करते हुए हिरण को मारने के कारण किंदम ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया। उसी से खिन्न होकर उन्होंने वानप्रस्थ ग्रहण किया और चैत्ररथ, कालकूट शृङ्ग से हिमालय को पार करके गंधमादन पर्वत पर तप करने चले गये।

धृतराष्ट्र—चले गये ? उनके साथ कुरुकुल वधू कुन्ती और माद्री भी चली गई ? अरे यह आयु सुख भोग की है। तप की नहीं है।

विदुर—महाराज उनके साथ बहुत से तपस्वी ब्राह्मण भी गये हैं। परन्तु उन्होंने अपना सब धन रत्न वस्त्र अपने दासी और सेवकों तथा ब्राह्मणों को लुटा दिया। वे सर्व त्यागी विरक्त होकर गंधमादन पर गये हैं।

धृतराष्ट्र—वही धन्य है विदुर। वही महात्मा कुरुकुल का तपस्वी है। परन्तु पाण्डु के बिना मैं कैसे रहूँगा ?

(गान्धारी आती है)

गान्धारी—आर्य पुत्र, आप कुरुकुल के आधार स्तम्भ हैं, आप ऐसे कातर क्यों ? धर्मात्मा पाण्डु धर्म रक्षा ही के लिये वन में गये हैं। उनके तप से कुरुवंश का कलुष नष्ट होगा। महाराज प्रसन्न हों।

धृतराष्ट्र—धन्य गान्धार नन्दिनी। तुम्हारा धैर्य-वाक्य जीवन दाता है। परन्तु वधु कुन्ती और माद्री।

गान्धारी—वे भी पति सेवा में है। धर्म परायण पति की धर्म परायण पत्नियाँ।

धृतराष्ट्र—तो विदुर, क्या भाई पाण्डु को फिर कभी आलिङ्गन कर सकूंगा।

विदुर—महाराज, समय सब कार्य सम्पादन करा देता है। अब आप अपने राजकाज में मन दीजिये।

गान्धारी—महाराज का मैं अभिनन्दन करती हूँ, महाराज प्रसन्न हों, क्योंकि कुरुवंश की वृद्धि की आशा है।

धृतराष्ट्र—अरे, तो क्या सचमुच कोई शुभ समाचार है।

विदुर—है महाराज, यशश्विनी गान्धारी रानी गर्भवती हैं। यथा समय वे वंश के प्रतापी पुत्रों को जन्म देंगी।

धृतराष्ट्र—सुखी हुआ, आप्यायित हुआ। प्रिये गान्धार दुलारी तुम धन्य हो। तो पाण्डु ने तप से कुरुकुल को पावन करने का उपक्रम किया है। प्रिये गान्धारी, चलो एक बार पाण्डु और बंधुओं को देख आवें।

गान्धारी—महाराज यथा समय ऐसा ही होगा, अभी आप राज व्यवस्था में ध्यान दीजिए जिससे प्रजा सुखी हो।

धृतराष्ट्र—तो प्रिये, ऐसा ही हो।

(जाते है)

दृश्य नवमाँ

(हस्तिनापुर का प्रासाद। बाहरी भाग। बहुत से ब्राह्मण और ऋषि गण पाण्डवों, कुन्ती सहित माद्री तथा पाण्डु के शव को लेकर आते है।)

एक ऋषि—अरे, कोई है, जाकर कुरुराज महाराज धृतराष्ट्र से कह दे कि हम हैमवत पर्वत के निवासी ब्राह्मण और मुनि महात्मा पाण्डु का मृत देह और उनके पुत्र कलत्र को लेकर आये हैं।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—क्या कहा ? महात्मा पाण्डु का मृत देह ! हाय ! हाय ! अरे यह संदेश महाराज धृतराष्ट्र नहीं सुन सकेंगे।

ऋषि फिर भी मित्र, महाराज को सूचित करना होगा।

(धृतराष्ट्र और गान्धारी विलाप करते हुए आते है। पीछे विदुर, सत्यवती, अम्बा, अम्बालिका, भीष्म, आदि भी है।)

कंचुकी—हाय हाय, देखो वह महाराज धृतराष्ट्र मतवाले हाथी की भाँति धूल मिट्टी में लथपथ विलाप करते परिजन सहित आ रहे हैं।

धृतराष्ट्र—अरे, कहो, कहो, मेरा प्रिय भ्राता महावीर पाण्डु कहाँ है ? जिसके भुजबल से मैं निश्चिन्त अकण्टक कुरुजाङ्गल का राज्य भोग रहा हूँ।

ऋषि—महाराज, नियति प्रबल है। महात्मा पाण्डु शाप वश मृत्यु को प्राप्त हुये। सती माद्री ने भी प्राण त्यागे, यह उनके शव है। यह उनकी पत्नी कुन्ती, और पाँचों पुत्र हैं, जो हमारे यहाँ धरोहर थे। अब आप इनके स्वामी हैं। हम इन्हें आप को सौंपते हैं।

धृतराष्ट्र—हाय वीरबाहु भाई, तुम मुझ अन्धे के बल थे। अरे, अब मेरे जीने से क्या लाभ !

ऋषि—महाराज, धैर्य से सुनिये। महात्मा पाण्डु वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर तप करने को हमारे बीच शतशृङ्ग पर्वत पर निवास करते थे। उन्होंने अपने वंश को नष्ट होने से बचाने के लिये पाँच पुत्र क्षेत्रज उत्पन्न किये। अब शाप वश महाराज मृत्यु वश हुये। आज उन्हें मरे सत्रह दिन हुये। मनी माद्री ने उसी समय प्राण त्याग दिये। अब आप शोक त्याग कर कुलरीति के अनुसार उनकी अन्त्येष्टि क्रिया कीजिये। और कुन्ती सहित इन पाँच बालकों को महात्मा पाण्डु के पुत्र स्वीकार कीजिये। इसी में आपका मंगल होगा।

भीष्म—हम ब्राह्मणों के वाक्य प्रमाण करते हैं और इन पाँचों बालकों को पाण्डु पुत्र स्वीकार करते हैं।

विदुर—तो इनके राजपुत्रवत सब संस्कार करके इनका राजमहालय में पालन हो।

सत्यवती—ब्राह्मण, इन पुत्रों के नाम अनुक्रम से कहें।

कुन्ती—(आगे बढ़कर) यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर है, यह धर्म के अंश से है।

सत्यवती—हमने प्रमाण किया।

कुन्ती—यह मेरा मध्यम पुत्र भीम है, यह वायु के अंश से है।

सत्यवती—हमने प्रमाण किया।

कुन्ती—यह मेरा कनिष्ठ पुत्र अर्जुन है, जो दिव्य अंश से है।

सत्यवती—हमने प्रमाण किया।

कुन्ती—यह माद्री पुत्र नकुल और सहदेव हैं, जो देव

अंश से हैं। हमारे ये पाँचों पुत्र वीर, बुद्धिमान और कुरुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले हैं। इनके सहित मैं आपकी वधु आपकी शरणापन्न हूँ।

भीष्म—इन देव तुल्य पुत्रों से कुरुकुल की शोभा होगी। (विदुर से) विदुर, तुम पाण्डु की अन्त्येष्टि संस्कार की व्यवस्था करो। फूलों से सजी हुई पालकी में छत्र चँवर लगा कर पाण्डु के शरीर का सत्कार करो।

सत्यवती—पुत्र देवव्रत, अब समय है कि मैं वन में जाकर तप करके सद्गति प्राप्त करूँ।

(व्यास आते हैं)

व्यास—माता, तुम्हारा यह विचार अत्यन्त उत्तम है। ऐसा ही करो।

(अम्बा अम्बालिका आती हैं)

अम्बा अम्बालिका—माता, हम भी आपके साथ वन को जावेंगी।

सत्यवती—चलो पुत्रियों, अब हम अपनी आत्मा की सद्-गति का उपाय करें।

(सब जाते हैं।)

*

अंक दूसरा

दृश्य पहिला

(स्थान—हस्तिनापुर अस्त्र परीक्षा की रंगभूमि। सब श्रेणियों के लोग यथा स्थान बैठे हैं। व्यास, भीष्म, कृप, धृतराष्ट्र, विदुर आदि कुरुवंशी गान्धारी, कुन्ती आदि रनवास की स्त्रियाँ क्षणागार में बैठी हैं।)

एक प्रेक्षक—वाह रंग भूमि ठीक-ठीक रची गई है। परन्तु राजपुत्रों के रङ्ग-ढङ्ग ठीक नहीं दीख रहे।

दूसरा—अरे भाई, क्या तुम नहीं जानते धृतराष्ट्र के पुत्र अपने मातुल शकुनी के परामर्श से पाण्डु पुत्रों से द्वेष रखते हैं।

तीसरा—परन्तु भाई, यथार्थ में पाण्डु पुत्र संदिग्ध है।

पहिला—तो इससे क्या? अर्जुन पृथ्वी पर अप्रतिभ धनुर्धर है। वह देखो—वही अपनी धनुर्विद्या के चमत्कार दिखा रहे हैं। वाह उन्होंने आग्नेयास्त्र से अग्नि प्रकट की, वरुणास्त्र से जल प्रकट कर उसे बुझाया। अरे, पर्जयास्त्र से बादल प्रकट हो गए। चमत्कार है! चमत्कार!

दूसरा—अहा देखो-देखो, गुरू द्रोणाचार्य उठ कर आगे आए हैं। सफेद वस्त्रों में स्वच्छ जनेऊ पहिने कैसे शोभायमान हैं।

तीसरा—वाह, उन्होंने गद्-गद् होकर अर्जुन को छाती से लगा लिया।

पहिला—सुनो-सुनो वे कुछ कह रहे हैं।

द्रोण—कुरुकुल के वृद्ध जन सुनें, मैंने सब राजपुत्रों को समभाव से शिक्षा दी है, परन्तु उन्होंने अपने व्यक्तित्व से उत्कर्ष प्रकट किया है। आप देख चुके मेरे प्रिय शिष्य आयुष्मान अर्जुन ने शस्त्रास्त्रों के असाधारण प्रयोग आपको दिखाये हैं।

एक दर्शक—देखो, वह सूर्य के समान तेजस्वी कवच कुण्डल धारी युवक कौन उठा?

दूसरा—वह कर्ण है, सुनो वह कुछ कह रहा है।

कर्ण—(खड़ा होकर) तो इस में असाधारण क्या है? अर्जुन तुम घमण्ड मत करो।

द्रोण—पुत्र, यह अविनय है।

कर्ण—आचार्य, यह पक्षपात है, (आगे बढ़ कर) ये सब हस्तलाघव मैं भी दिखा सकता हूँ। (उसी भांति अस्त्र संचालन करता है, सर्वत्र हर्षनाद होता है।)

दुर्योधन—(उठकर कर्ण को छाती से लगाकर) मित्र, तुम्हारा आना मेरे लिये सौभाग्य की बात है, यह राज्य ऐश्वर्य सब तुम्हारा ही है। तुम मेरे शत्रुओं के सिर पर पैर रख कर मेरे साथ मित्र बन कर रहो।

कर्ण—युवराज, मेरी इच्छा अर्जुन से द्वन्द युद्ध करने की है।

अर्जुन—जो लोग बिना बुलाये आते और बकवाद करते हैं, उन्हें मैं अपने बाणों की नोक पर रखता हूँ।

कर्ण—रङ्गभूमि सब के लिये है। वचनों का आक्षेप दुर्बल जन करते हैं। तुम बाणों से बात करो, मैं अभी तुम्हारा सिर काटे लेता हूँ।

अर्जुन— (धनुष उठाकर) अच्छी बात है आ, और मृत्यु को वरण कर ।

कर्ण— (धनुष चढ़ा कर) कौन मृत्यु को वरण करता है, यह अभी सब देख लेंगे ।

(दोनों आगे बढ़ते हैं । कृपाचार्य रङ्गभूमि में आते हैं ।)

कृपाचार्य—(कर्ण से) ठहरो वीर, पहिले यह कहो तुम कौन हो, तुम्हारा कुल गोत्र वंश क्या है ? राजकुमार अज्ञात कुल शील या नीच जनों से द्वन्द नहीं करते ।

कर्ण—(लज्जित होकर) इससे क्या ? कुल शील दैवाधीन है, परन्तु पुरुषार्थ मेरे आधीन है ।

(अधिरथ सारथी आता है ।)

अधिरथ—(दोनों हाथ फैला कर) अरे पुत्र, अरे पुत्र, यह क्या करता है, शस्त्र रख दे ।

कर्ण—(पालक पिता के चरणों में सिर रख कर) पिता, चिन्ता न करो, मैं तुम्हारा दास त्रिलोकी को इसी धनुष से विजय कर सकता हूँ ।

अर्जुन—(घृणा से) तो तुम नीच सूत पुत्र हो ? जाओ मेरे अश्वों की सेवा करो, तुम्हें पुरष्कार मिलेगा ।

दुर्योधन—(सिंहासन से उठ कर आगे आकर) राजवंश या श्रेष्ठकुल में उत्पन्न पुरुष, वीर पुरुष, और सेनापति ये तीनों राजा होने के अधिकारी हैं । यदि अर्जुन राजा ही से युद्ध करना चाहते हैं तो मैं वीर शिरोमणि कर्ण को अंग देश का राज्य देता हूँ । (अंगूठा चीर कर रक्त से तिलक देता है । और वहीं स्वर्ण सिंहासन पर बैठा कर सप्त तीर्थोदक से अभिषेक करता है ।)

कर्ण—महाराज दुर्योधन, आज से यह शरीर और प्राण आपके हुये।

दुर्योधन—मित्र, तुम्हारी मैत्री प्राप्त कर मैं कृतार्थ हो गया।

भीम—(हँस कर) कर्ण, तुम सारथी के लड़के हो, इस लिये अर्जुन के हाथ से मारे जाने के योग्य नहीं (अर्जुन से) अर्जुन, इसे छोड़ दो।

अर्जुन—अच्छा छोड़े देता हूँ, (जाता है)

कर्ण—(क्रोध से) भीम, क्षत्रियों में बल का ही आदर होता है। वीरों और नदियों के जन्म का निश्चय नहीं रहता। खुद तुम पाण्डवों के जन्म का हाल भी मुझे मालूम है।

दुर्योधन—(कर्ण का हाथ पकड़ कर) सूर्यास्त हो रहा है, इन बातों से अब क्या? चलो मित्र, अर्जुन से फिर कभी समझ लिया जायगा।

(दोनो जाते है। सब जाते है।)

दृश्य दूसरा

(स्थान—हस्तिनापुर का रंग महल। धृतराष्ट्र दुर्योधन कर्ण, और शकुनी परामर्श कर रहे है)

दुर्योधन—महाराज, आप मेरे रहते युधिष्ठिर को युवराज बना रहे हैं, अब आज्ञा दीजिये मैं वन गमन करूं?

धृतराष्ट्र— वन गमन क्यों?

दुर्योधन—अब मेरी हस्तिनापुर में क्या आवश्यकता है ? युधिष्ठिर को मैं अपने सिर पर नहीं बैठा सकता।

धृतराष्ट्र—युधिष्ठिर ज्येष्ठ हैं; योग्य हैं, सहनशील स्थिरमति, दयावान, क्षमावान, जितेन्द्रिय और लोकप्रिय हैं इसी से उसे मैंने युवराज बनाने का विचार किया है।

कर्ण—किन्तु महाराज, आप अपने पुत्रों के सम्बन्ध में भी तो सोचिये कि उनका क्या होगा। भीम बलदेव से गदायुद्ध में निपुण होकर आ गया है। अर्जुन से द्रोण ने प्रतिज्ञा कर ली है कि वे कभी उससे युद्ध न करेंगे। आज संसार में यह बात फैल गई है कि अर्जुन के समान दूसरा धनुर्धर संसार में नहीं है। उसने गन्धर्वों को विजय करने वाले सौवीर राज को मारा, जिस यवनराज को पाण्डु भी न हरा सके थे उसे परास्त किया और पूर्वी और दक्षिण देश जीत लाये। नकुल चित्र युद्ध में अतिरथ प्रसिद्ध है। अब उनका यश फैल रहा है राज्य भी उनके हाथ में रहेगा तो कुरुवंश की समाप्ति है। महाराज, पाण्डवों की उत्पत्ति की ओर ध्यान दीजिये और कुरुकुल की प्रतिष्ठा को देखिये।

धृतराष्ट्र—यह तो मैं सब समझता हूँ इसीलिए मैंने नीतिवान कणिक को बुलाया है। मैं उससे परामर्श किया चाहता हूँ, उसे उपस्थित करो।

कर्ण—जो आज्ञा (जाता है और कणिक के साथ आता है)

धृतराष्ट्र—महात्मन्, हमें यह कहो कि पाण्डवों के साथ हम कैसा व्यवहार करें। आप नीति के महा पण्डित हैं। हमें सद् परामर्श दीजिये जिससे हमारा कुल दूषित न हो।

कणिक—राजा की सर्व श्रेष्ठ नीति पौरुष और दण्ड

है। उसी से शत्रु और प्रजा संयम में रहते हैं। चतुर पुरुष अपने पर चोट करने का दूसरों को अवसर नहीं देते, स्वयं अवसर पाते ही औरों पर चोट करते हैं। जैसे कछुआ अपना अंग छिपाये रहता है, उसी भाँति राजा अपने सहाय, साधन, उपाय आदि अंग छिपाए रक्खे। तथा शत्रु को कभी जीता न छोड़े। छोटे शत्रु को भी तुच्छ न समझे। इस समय आप कुरुजांगल के श्रेष्ठ राजा हैं। आपके भतीजे पाण्डव बली और बुद्धिमान हैं। उनसे अपनी और अपने ऐश्वर्य की रक्षा समय रहते कीजिए।

शकुनी—महाराज, आर्य कणिक ने जो नीति कही है वही सब श्रेष्ठ है। यदि पाण्डव राज्य पा जावेंगे तो आपके वंश वाले सदा दुःख पावेंगे।

दुर्योधन—(आँखों में आँसू भर कर) महाराज, ऐसा उपाय कीजिये कि जिससे हमें दूसरों के दिये अन्न से पेट न पालना पड़े।

धृतराष्ट्र— तो तुम्हारी क्या इच्छा है वह कहो। पाण्डु नाम मात्र के राजा थे, वे सब काम मुझ से पूछ कर करते थे। वे मेरा और सबका मान करते थे। पाण्डु की दी हुई वृत्ति से आज भी मंत्री, सेनापति, सैनिक और उनके पुत्र पौत्र पल रहे हैं, यदि हम उन्हें बलपूर्वक राज्याधिकार से वंचित करते हैं तो सेना और प्रजा हमारे विपरीत हो जायगी तथा हमें राज्य और प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।

दुर्योधन—सब बातों पर विचार करके ही मैं प्रजा को अपनी ओर करने की चेष्टा कर रहा हूँ। इस समय राज्य कोष मेरे ही हाथों में है, मन्त्री भी मेरे वश में है। यदि पाण्डव एक बार यहाँ से दूर चले जांय तो मैं सिंहासन पर बैठ कर अपनी जड़ पक्की कर लूं।

धृतराष्ट्र—भीष्म, द्रोण, विदुर, कृप इसमें हमारा विरोध करेंगे।

दुर्योधन—भीष्म सब को समान मानते हैं, वे उदासीन रहेंगे। अश्वत्थामा मेरे मित्र हैं, इससे कृप और द्रोण मेरे पक्ष में रहेंगे। अकेले विदुर पाण्डवों का पक्ष लेकर भी हमारा कुछ न बिगाड़ सकेंगे। आप निश्चिन्त होकर उन्हें वारणावत भेज दीजिए।

धृतराष्ट्र—वारणावत क्यों ?

शकुनी—महाराज, वह बड़ा मनोरम स्थान है, वहाँ एक मेला भी लगने वाला है, उत्सव भी होगा। पाण्डव वहाँ जाकर वहाँ के प्राणीजनों का दान मान से सत्कार करें जिससे उनका यश बढ़ेगा।

धृतराष्ट्र—अच्छा, मैं यथा समय इसकी व्यवस्था करूँगा।

दृश्य तीसरा

(**स्थान**—वारणावत का लाक्षागृह—पाण्डव और कुन्ती की गुप्त मन्त्रणा)

युधिष्ठिर—अर्जुन, तुमने सोचा कि क्यों हमें यहाँ भेजा गया है, और यह मन्त्री पुरोचन हमारी सेवा के बहाने रात दिन द्वार पर बैठ कर क्यों हम पर पहरा लगा रहा है।

भीम—महाराज, यह अंधे राजा की हमें राजधानी से दूर भेजने की चाल थी। वह और उसके पुत्र हमारा उत्कर्ष नहीं देख सकते।

अर्जुन—मुझे संदेह है कि यह भवन जो देखने में इतना भव्य है, इसमें कुछ भेद है। इसमें मुझे लाक्षा गन्ध आती है।

युधिष्ठिर—अर्जुन—क्या तुम भूल गए कि जब धर्मात्मा विदुर हमें विदा करने आये थे, तब उन्होंने म्लेच्छ भाषा में हमें पाँच सूत्र संकेत दिये थे।

अर्जुन—मैं तो भूल गया।

भीम—मैं भी।

युधिष्ठर—परन्तु मैं नहीं भूला। उनमें सार है।

अर्जुन—वे सूत्र क्या हैं?

युधिष्ठिर—विदुर ने कहा था—एक अस्त्र है जो लोहे का न होने पर भी शरीर को नष्ट कर डालता है, कहो वह क्या है?

अर्जुन—(कुछ सोचकर) अग्नि।

युधिष्ठिर—ठीक कहा। फिर कहा था, बिलों में रहने वाले जीव उससे बच जाते हैं।

भीम—अहा, महात्मा विदुर ने हमें सुरंग बनाने का संकेत किया था।

युधिष्ठिर—ठीक है। तीसरा सूत्र था—अन्धों को राह नहीं सूझती उसे दिशा भ्रम हो जाती है।

नकुल—मैं समझ गया। अर्थात् हमें सब राह घाट देख रखने चाहिए।

युधिष्ठर—यही बात है। चौथा सूत्र था अस्त्र का प्रयोग स्वयं करने से अपनी रक्षा और शत्रु का नाश होता है।

अर्जुन—अब मैं समझ गया। हमें इस घर में से वन तक सुरंग खोदना चाहिए और सब राह घाट ठीक २ देख रखने चाहिए फिर अवसर पा घर में आग लगा कर पुरोचन को नष्ट कर आप सुरंग से भाग चलना चाहिए। यह काम रात में होगा। हमें नक्षत्रों और दिशाओं का ज्ञान ठीक ठीक होना चाहिए।

युधिष्ठिर—निस्संदेह, दुर्योधन ने हमें इस घर में जला मारने की व्यवस्था की है। उसकी यह व्यवस्था हम नष्ट करेंगे तथा कोई पाँच प्राणी इसमें जल मरने भी चाहिए, जिससे शत्रु को हमारे मरने का विश्वास हो जाय।

कुन्ती—इसकी व्यवस्था सहज ही हो जायगी। बहुत लोग रात को घर में आश्रय लेते हैं।

युधिष्ठिर—अब एक बात सुनो। वह वधिर दास हमारा विश्वस्त है। पांचवा सूत्र था—"वधिर विश्वस्त होते हैं।

भीम—तो निश्चय यह विदुर का जन है।

युधिष्ठिर—उसी को सुरंग खोदने पर लगा दिया जाय।

अर्जुन—यही ठीक होगा।

भीम—हम मृगया के बहाने वन घाट राह सब को भली भाँति देख समझ लेंगे। जिससे निकल भागने में सुविधा रहे।

अर्जुन—धूर्त कौरवों ने हमें लाक्षागृह में जला कर मार डालने का प्रबन्ध किया है, और अपने विश्वस्त मंत्री पुरोचन को यह जघन्य कार्य करने का आदेश दिया है। अब हम इसी पुरोचन को जला कर यहाँ से जांय।

युधिष्ठिर—ऐसा ही हो। परन्तु सावधानी से हमें अपना मन्त्र गुप्त रखना चाहिए।

सब—यही ठीक है।

(सब जाते हैं।)

दृश्य चौथा

(स्थान—द्रुपद की स्वयंवर सभा—सब राजा लोग बैठे हैं। पाण्डव ब्राह्मण वेश में आकर ब्राह्मणों के मध्य जा बैठते हैं।)

युधिष्ठिर—देखो अर्जुन, यह अपने भाइयों और कर्ण के साथ कुरुवंशी दुर्योधन भी यहाँ उपस्थित है। अन्य देश देश के राजा ही नहीं, देवता, देवर्षि, सिद्ध, गन्धर्व, चारण, यक्ष आदि भी आये हैं। अब जो व्यक्ति इन पांच बाणों से घूमते हुए चक्र के बीच से मछली को वेध दे, उसी को त्रिलोकाङ्गना द्रुपद सुता वरमाल देगी।

अर्जुन—वह देखिए, द्रुपद सुता जयमाल लिये मंच पर अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ आ रही है, सब राजा जैसे उसे देखकर उन्मत्त हो गये हैं। देखिए, राजा लोग उठ-उठ कर धनुष चढ़ा कर लक्ष्य वेध किया चाहते हैं, परन्तु उनमें बहुत तो धनुष छूते ही औंधे मुँह गिर जाते हैं।

युधिष्ठिर—इसमें मुझे रहस्य प्रतीत होता है, वह देखो कृष्ण और बलराम भी हैं। उन्होंने हमें पहचान लिया है, और वे यादवों को लक्ष्य वेध करने से रोक रहे हैं।

भीम—देखिये वह कौन वीर उठा ?

युधिष्ठिर—यह कर्ण है।

कर्ण—(धनुष हाथ में उठा कर) हे राजाओं देखो, मैं यह लक्ष्य वेध करता हूँ।

द्रौपदी—किन्तु मैं सूत पुत्र को पति नहीं बनाऊंगी।

(कर्ण क्रोध और लज्जा वश हो धनुष रख कर बैठ जाता है)

भीम—अर्जुन, अब तुम उठो।

अर्जुन—जैसी आज्ञा (उठ कर लक्ष्य वेध की ओर जाता है।)

ब्राह्मण—(हाथ में आसन मृगछाला उछाल कर) बहुत अच्छा, देखो, तपस्वी ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं।

(अर्जुन क्षण भर ही में लक्ष्य वेध कर देता है। चारो ओर हर्ष ध्वनि होती है। द्रौपदी उनके कण्ठ में जयमाला डाल कर उनके पीछे २ चल देती है)

सब राजा—यह नहीं हो सकता, हम राजाओं के रहते एक सामान्य ब्राह्मण राजपुत्री को नहीं ले जा सकता।

(शस्त्र ले लेकर आते हैं)

द्रुपद—सब कोई सुनो। यह ब्राह्मण जो कोई भी हो, इसने प्रतिज्ञा पूर्ण की है। जो कोई इस भाग में बाधक होगा मेरी सेना उसका विध्वंस करेगी।

सब राजा—अरे इतना घमंड। अच्छा देखा जायगा।

(शस्त्र ले ले कर आगे बढ़ते हैं)

अर्जुन—(द्रुपद के आगे खड़ा होकर और हँस कर) आप सब देखते रहें, मैं अभी इन सब अभिमानी राजाओं को ठीक किये देता हूँ।

(युद्ध होता है राजा परास्त होकर भागते हैं। तब आगे २ पाण्डव और पीछे २ द्रौपदी एक ओर को जाते हैं)

दृश्य पांचवाँ

स्थान—(हस्तिनापुर का राज प्रासाद। महाराज धृतराष्ट्र का एकान्त कक्ष। विदुर का प्रवेश)

विदुर—महाराज की जय हो। बड़े भाग्य की बात है कि कौरवों का बोल बाला हुआ।

धृतराष्ट्र—बड़ी बात, बड़ी बात। अरे कौन है? जाओ नगर में प्रचार कर दो कि वधू द्रुपद नंदिनी का ठाट से स्वागत किया जाय। सब पौर जन उत्सव मनावें, दीपावली जलावें। और वत्स विदुर, तुम कोष से बहु मूल्य रत्न वस्त्र ले जाकर वधू का सत्कार करो। तथा पुत्र दुर्योधन को वधू पांचाली सुता सहित मेरे पास ले आओ।

विदुर—महाराज प्रसन्न हों। द्रुपद नन्दिनी ने महावीर पाण्डवों को अपना पति स्वीकार किया है। और वे स्वयंवर में उपस्थित अनेक आत्मीयजनों से मिल कर आनन्द पूर्वक द्रुपद के यहां उपस्थित हैं। वारणावत में उनके जल मरने की बात ही मिथ्या थी। महाराज. द्रुपद ने बहु मान से धन-रत्न-दास दासी और सेना देकर पाण्डवों का आदर किया है, और कुरुकुल की मर्यादा की रक्षा की है।

धृतराष्ट्र—साधु-साधु, ऐसा हुआ है? मैं यह सुन कर बहुत सन्तुष्ट हुआ। पाण्डु पुत्रों को मैं अपने पुत्रों से बढ़ कर प्यार करता हूँ। इस समय वे मित्र और महावली सम्बन्धी को पाकर कुशल पूर्वक जीवित हैं यह जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। राज लक्ष्मी से भ्रष्ट कौन राजा महाराजा द्रुपद का आश्रय पाकर सहज ही अपनी उन्नति नहीं कर सकता।

विदुर—महाराज के विचार स्तुत्य हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि महाराज के सदा ही ऐसे विचार रहें। युवराज दुर्योधन, शकुनी, दुःशासन, कर्ण और अश्वत्थामा एवं कृपाचार्य महाराज के दर्शनार्थ आ रहे हैं अब मैं चलूँ।

(जाता है)

(दुर्योधन आदि आते हैं)

दुर्योधन—सुन लिया महाराज।

धृतराष्ट्र—सुन लिया, सुन लिया।

दुर्योधन—हमने भी सुन लिया महाराज, आप विदुर के आगे शत्रुओं की उन्नति को अपनी बढ़ती मान कर हर्ष प्रकट कर रहे थे।

धृतराष्ट्र—किन्तु पुत्र.... ....

दुर्योधन—निष्पाप महाराज, यदि आप आज्ञा दें तो निवेदन करूँ कि आप कर्तव्य को छोड़ कर अब कुछ और ही कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र—ऐसी बात? नहीं पुत्र ऐसा नहीं। परन्तु पाण्डव भी मेरे पुत्र हैं।

दुर्योधन—तो महाराज, फिर आज्ञा दीजिये कि हम पुत्र कलत्र सहित वन चले जाँय। आप उन कलंकितों को कुरुकुल के सिंहासन पर अभिषिक्त कर दीजिये।

धृतराष्ट्र—परन्तु पुत्र, कुरुकुल का सिंहासन तो तेरा है?

दुर्योधन—तो पाण्डवों की बात बात में विजय कुरुकुल की पराजय है।

कर्ण—हमें तो नित्य उनके बल को नष्ट करने की धुन में लगे रहना चाहिए। अभी समय है; हमें अभी से ऐसा कोई उपाय सोचने की चेष्टा करनी चाहिए कि जिसमें वे आगे चलकर पुत्र बान्धव सहित हम लोगों को नष्ट न कर सकें।

धृतराष्ट्र—तुम दोनों जो करना चाहते हो वही मेरी भी राय है। पर मैं विदुर के आगे अपने मन का भाव प्रकट नहीं कर सकता। पुत्र दुर्योधन, तुम्हारी समझ में जो कर्तव्य हो

वह मुझ से कहो। और कर्ण, तुम भी जो कार्य समयानुकूल समझो वह करो।

दुर्योधन—महाराज, इस समय कपट वेशधारी ब्राह्मणों को भेज कर कुन्ती और माद्री पुत्रों में परस्पर मन-मुटाव करा देना चाहिए।

कर्ण—या अतुल धन सम्पत्ति देकर द्रुपद और उनके पुत्रों को मिला लेना चाहिए। जिससे वे पाण्डवों को आश्रय न दे सकें।

शकुनी—अथवा ऐसा किया जाय कि हमारे भेजे हुए छद्मवेशी ब्राह्मण हस्तिनापुर में रहने के दोषों और भयों को इस प्रकार वर्णन करें कि पाण्डव वहीं पाञ्चाल में बस जाँय।

कृपाचार्य—क्यों न कुछ चतुर राजनीति-विचक्षण पुरुष पाण्डवों के निकट जाकर उनके विश्वास पात्र बन जाँय। फिर उनमें परस्पर फूट करा दें। द्रौपदी को उनका विरोधी बना दें। द्रौपदी पांचों भाइयों की पत्नी है। अतः द्रौपदी के कारण ही पांचों पाण्डवों में कलह उत्पन्न होना बहुत सरल है।

दुर्योधन—किन्तु भीमसेन को तो गुप्त रीति से विष दिला कर मरवा डालना ही चाहिए। वही हमारा सबसे भयानक बैरी है। उसी के बलबूते पर युधिष्ठिर हमें कुछ नहीं समझते। और भीम ही के सान्निध्य के कारण अर्जुन अजेय बने हैं। भीमसेन के मारे जाने पर पाण्डव यहाँ आये भी तो वे हमसे हीन बन कर रहेंगे, और हम कूटनीति का आश्रय लेकर उनको छिन्नबल कर डालेंगे।

शकुनी—यदि उनके पास चतुरा स्त्रियाँ भेजी जायं, जो उनका मन मोह कर उन्हें कामुक बना दें और द्रौपदी से उन्हें विमुख कर दें तो बानक बन जाय।

कृपाचार्य—एक उपाय यह भी है कि कर्ण को उन्हें आदर पूर्वक लेने को भेजा जाय। और यहाँ आने पर उन्हें विष देकर मरवा डाला जाय।

दुर्योधन—हमने इतने उपाय निवेदन किए हैं। इनमें जो निर्दोष और सुकर महाराज को प्रतीत हों, हमारे कल्याण के लिये महाराज वही तुरन्त करें। विलम्ब न करें, क्योंकि जब तक द्रुपद को पाण्डवों का और पाण्डवों को द्रुपद का पूरा विश्वास नहीं हो जाता तभी तक हम पाण्डवों का निग्रह कर सकते हैं।

धृतराष्ट्र—तुम लोगों की सलाह मैंने सुनी। पर वह मुझे भली नहीं लगी। इन कुटिल उपायों से पाण्डवों का निग्रह नहीं हो सकता। ऐसे तुच्छ और गुप्त उपाय तो तुम पहले भी काम में ला चुके हो। पहिले वे बालक और मित्रहीन थे तब भी तुम उनका कुछ अनिष्ट नहीं कर सके, अब तो वे समर्थ भी हैं, तुम से दूर भी हैं और उनके अनेक सहायक हैं, इस लिये मेरी समझ में भेद नीति और गुप्त उपाय कुछ भी कारगर नहीं होंगे।

कर्ण—तो महाराज, उनकी जड़ जमने से पहले ही उन पर चढ़ाई कर दी जाय। उनका वंश, वाहन, और मित्रों का मण्डल बढ़ने के पूर्व ही उन्हें कुचल दिया जाय। पराक्रम ही के द्वारा हम इस पृथ्वी का राज्य निष्कण्टक कर सकते हैं।

धृतराष्ट्र—वीर सूत्र पुत्र, तुम्हारे शौर्यपूर्ण वचन सुन कर संतुष्ट हुआ। तुम महाज्ञानी, और महावीर हो, परन्तु यह विषय अधिक जटिल है इस पर भीष्म, द्रोण, और विदुर से भी परामर्श करना होगा। पुत्रों, अब तुम विश्राम करो, मैं समयानुकूल व्यवस्था करूँगा।

सब—जैसी महाराज की आज्ञा।

(सब जाते हैं)

दृश्य छठा

(स्थान—हस्तिनापुर का अन्तःपुर—दुर्योधन और गान्धारी वार्तालाप कर रहे हैं)

दुर्योधन—माता, मैं यह अन्याय सहन न करूंगा।

गान्धारी—पुत्र, अन्याय क्या है, महाराज ने पाण्डवों को खाण्डवप्रस्थ का राज्य दिया है। अब तुम सुख से हस्तिनापुर का राज्य भोगो।

दुर्योधन—माता, एक तो द्रुपद की सहायता पाकर पाण्डव बड़े सामर्थवान हो गए, फिर अब मिल गया आधा राज्य, तुम देख लेना वे अवश्य हमारा राज्य हड़प लेंगे।

गान्धारी—तुम यदि धर्मपूर्वक अपना राज्य भोगोगे तो कुरु जांगल के प्रकृत राजा तो तुम्हीं हो। तुम्हारे मित्र सहायक बहुत हैं, फिर भय क्यों ?

दुर्योधन—राज्य के इस प्रकार खण्ड २ करके बाँट देने से राज सत्ता ही नष्ट हो जाती है।

गान्धारी—यह ठीक है पुत्र, परन्तु धर्मात्मा पाण्डु के पुत्र भी परमुखापेक्षी नहीं रह सकते। यदि तुम इसमें बाधा डालोगे तो तुम्हारा भला नहीं होगा।

दुर्योधन—मैं तो कदापि यह सहन न करूँगा कि हमारे राज्य के दो भाग हों।

गान्धारी—पुत्र, राजनीति में कुछ अकरणीय भी करना पड़ता है।

दुर्योधन—माता, क्या कोई ऐसा उपाय नहीं कि पाण्डवों को वह राज्य न मिले।

गान्धारी—नहीं, पुत्र, मैं तुम्हारे ऐसे किसी अनुरोध को नहीं सुनूँगी। तुम पाण्डवों से प्रेम और प्रतीत बढ़ाओ इसी में कल्याण है।

दुर्योधन—जैसी माता जी की आज्ञा। (जाता है)

———————

अंक तीसरा

दृश्य पहला

(स्थान—इन्द्रप्रस्थ की सभा भवन का एक प्रकोष्ठ)

समय—प्रातःकाल। (गान्धार कुमार शकुनी और दुर्योधन का प्रवेश)

दुर्योधन—देख लिया आपने मातुल।

शकुनी—सब कुछ देख लिया, युधिष्ठिर का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। उसका अवभृथ स्नान भी हो गया। अब वही उत्तराखण्ड का सम्राट है, तुम नहीं।

दुर्योधन—मातुल, महापराक्रमी अर्जुन के शस्त्रबल से पृथ्वी के सब राजा हार गये, और युधिष्ठिर के वशीभूत हो गये। कम्बोज के राजा ने काले, नीले और लाल रंग की मृग छालाओं, ऊनी कम्बलों और आसनों का ढेर युधिष्ठिर को भेंट किया। हाथी, घोड़े, ऊँट और गायों से तो उसकी पशु-शाला भर गई। सब राजाओं ने जैसे रत्नों के ढेर लाकर युधिष्ठिर को अर्पण किये हैं, वैसे रत्नों को मैंने कभी देखा सुना भी न था।

शकुनी—तुमने देखा नहीं भागिनेय, हज़ारों गो सेवा करने वाले ब्राह्मण और शूद्र कृषक तथा गोधन सम्पन्न सहस्रों जन घी दूध से भरे घड़े लिये भीड़ में राह न मिलने से द्वार ही पर खड़े रहे। और समुद्र तीरवासी राजाओं ने जो सहस्रों षोड़सी दासियाँ रूप और स्वर्ण रत्न से लदी हुई भेंट कीं, उनकी भी कोई उपमा थी।

दुर्योधन—नहीं थी मातुल, परन्तु प्राग्ज्योतिषपुर के यवन

राज महारथी भगदत्त अपने वायु के समान वेगवान अश्व और बहुमूल्य रत्नों की भेंट लिये राह न मिलने के कारण जब द्वार पर खड़े रह कर लौट गये तब मैंने युधिष्ठिर के प्रताप को समझा।

शकुनी—एक भगदत्त ही क्या, सैकड़ों राजा ही द्वार पर खड़े थे। चीन, शक, ओड्र, बर्बर, हारहूण, हिमाचलवासी, नीप, शकतुषार और रौमान्तिक नृपति महामूल्यवान यान, पलंग, पोशाक, मणि-मुक्ता, हाथीदांत, रथ, अश्व, शस्त्र भेंट लिये भीड़ में द्वार ही पर खड़े रहे। भीतर घुसने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला।

दुर्योधन—किरात, दरद, शूर, यमक, औदुम्बर, पारद, वाल्हीक, काश्मीर, दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त, यौधेय, मद्र, केकय, अम्बष्ठ, मालव, पल्हव, आदि के प्रमुख जन अगरु, चन्दन के ढेर, १० हज़ार दासियां और पर्वत के जैसे सुनहरी झूलों से सुसज्जित हज़ारों हाथी लिये युधिष्ठिर की कृपा कटाक्ष की याचना कर रहे थे।

शकुनी—जुम्बुर गन्धर्व ने जो आम के पत्ते के रंग वाले एक सौ घोड़े युधिष्ठिर को अर्पण किये और विराटेश्वर ने जो दो हजार अप्रतिभ गजराज दिये उनकी तुलना पृथ्वी में नहीं है।

दुर्योधन—नहीं है, मातुल नहीं है। एक राजा द्रुपद ने ही १४ हज़ार दास दासी और १० हज़ार सेवक और असंख्य स्वर्ण रत्न के ढेर दिये।

शकुनी—चोल और पाण्ड्य नरेशों के चन्दन के अर्क भरे स्वर्ण घट और दर्दुर पहाड़ का कृष्णागरु तथा सुनहरी तारों से बुना हुआ वस्त्र और सिंहल के राजा के अप्रतिभ मोती और वैडूर्य का तो नाप तोल ही न थी।

दुर्योधन—फिर भी वे सब द्वार ही पर रोक दिये गये। और वे सब चिरकाल तक द्वार ही पर खड़े रहे। मुझे तो यह सब देख कर ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे सब संसार ही वहाँ इकट्ठा हो रहा है।

शकुनी—यज्ञ में ८८ हज़ार स्नातक ब्राह्मण थे, जिनमें से प्रत्येक की सेवा में युधिष्ठिर ने तीस २ दासियाँ नियुक्त कर दी थीं। १० हज़ार ऊर्ध्व रेतायति नित्य सोने के थालों में भोजन करते थे।

दुर्योधन—क्या कहूँ मातुल, मेरा हृदय जलाने के लिये युधिष्ठिर ने भेंट में आए हुए रत्नों का लेखा जोखा रखने का काम मुझे सौंपा, वहाँ इतने रत्न आए कि जिनका हिसाब ही नहीं रख सका। उन्हें ख़ज़ाने में रखते २ मैं थक गया।

शकुनी—जो राजा पृथ्वी पर यशस्वी और महा प्रतिष्ठित कहाते हैं, वे सब युधिष्ठर के सेवक बन गये, वे राजा लोग अपने हाथ से विविध अभिषेक सामग्री से परिपूर्ण पात्रों को ले कर पंक्ति बांध कर खड़े हो गये। वाल्हीकराज ने सुसज्जित स्वर्ण रथ ला खड़ा किया, राजा सुदक्षिण ने काम्बोज नस्ल के घोड़े उपस्थित किये, महाबली सुनीथ रथ के नीचे की लकड़ी ले आए, चेदिराज शिशुपाल ने ध्वजा लगा दी, दक्षिक के राजा ने कवच, मगधराज ने पगड़ी और माला, वसुदान ने हाथी, विराटेश्वर ने स्वर्ण मंडित जुआ, एकलव्य ने मणि जटित जूता, चेकितान ने तरकस, काशीराज ने धनुष, और शल्य ने खड्ग लाकर दिया। अवन्तीराज सब तीर्थों का जल ले आए। तब धौम्य, व्यास, नारद, देवल और असितमुनि ने अभिषेक का अनुष्ठान प्रारंभ किया।

दुर्योधन—वह सब मैंने इन्हीं आँखों से देखा मातुल!

उस समय जब महाबाहु सात्यकि ने युधिष्ठिर के मस्तक पर श्वेत छत्र लगाया, भीमसेन और अर्जुन व्यजन डुलाने खड़े हुए, नकुल सहदेव चवरें लिये आ खड़े हुए। और वासुदेव कृष्ण ने जब विश्वकर्मा द्वारा बनाए बहुमूल्य शैक्य से युधिष्ठिर का अभिषेक किया तब मुझे महा कष्ट हुआ और जब मङ्गल सूचक सहस्रों शंखों की ध्वनी हुई तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए।

शकुनी—भागिनेय, ऐसे ऐश्वर्य के अधिकारी तो पहिले रन्तिदेव, नाभाग, यौवनाश्व, मनु, वेन और उनके पुत्र पृथु, भागीरथ, ययाति, नहुष आदि भी नहीं थे।

दुर्योधन—हाय, केवल भाइयों ही की सहायता से युधिष्ठिर ने इन्द्र की भाँति निर्विघ्न राजसूय महायज्ञ पूरा कर लिया और वह सम्राट् बन गया।

शकुनी—भाइयों की ही सहायता क्यों, कंस के दास पुत्र उस गोप कृष्ण को क्यों भूले जाते हो?

दुर्योधन—युधिष्ठिर ने द्रोण, भीष्म, द्रुपद, शल्य, द्रुम, भीष्मक, कर्ण आदि महापूज्य पुरुषों ब्राह्मणों और राजाओं के रहते सबसे पहिले इस वृष्णि दुरात्मा कृष्ण को अर्घपाद्य दिया, और जब महाबली शिशुपाल ने उसका विरोध किया तो इस छली ने अकस्मात ही सुदर्शन चक्र से सब ब्राह्मणों और क्षत्रियों के समक्ष उसका सिर काट लिया। सब देखते रह गये? दन्तवक्र, जयत्सेन, वृषसेन, कलिङ्ग-राज, विराट, भगदत्त आदि महारथी जैसे जड़ हो गये।

शकुनी—यही हुआ। पूजा तो कुरुओं के अधिपति तुम्हारी ही होनी चाहिये थी। तुम्हीं से तो आधा राज पाकर युधिष्ठिर राजा बना है।

दुर्योधन—तो मातुल, मैं आप और इन सब महारथियों की सहायता से पहिले इन पापी पाण्डवों ही को जय करूं।

शकुनी—यह दुराकांक्षा ठीक नहीं है भागिनेय, ये पाँचों पाण्डव महाबली हैं। इन्हें कृष्ण और सब राजाओं का सहयोग प्राप्त है। इनके विरुद्ध हाथ उठा कर आज देवता भी नहीं जय प्राप्त कर सकते।

दुर्योधन—तो फिर मेरे लिये कोई आशा नहीं है?

शकुनी—क्यों नहीं, अरे भागिनेय, जब तक मैं तुम्हारा परम शुभचिंतक हूँ, तब तक आशा ही आशा है।

दुर्योधन—तो मातुल, कहिए कैसे?

शकुनी—तुम एक उपाय से युधिष्ठिर को जीत सकते हो, उसे चौसर खेलने का बड़ा व्यसन है, पर खेल में अनाड़ी है। इधर मै इस काम में पूरा निपुण हूँ, चौसर खेलने में मेरे समान दूसरा व्यक्ति पृथ्वी पर नहीं है। तुम पासे खेलने के लिये युधिष्ठिर को झटपट बुलाओ, मैं जानता हूँ कि वह नाहीं नहीं करेगा, बस तुम उसे मेरे साथ चौसर खेलने पर राज़ी कर लो, फिर मैं तुम को उनका साम्राज्य वैभव, और सभा आदि सब कुछ जीत दूंगा।

दुर्योधन—वाह, वाह मातुल, आप धन्य हैं।

शकुनी—किन्तु इसके लिये तुम्हें अपने पिता से आज्ञा लेनी होगी।

दुर्योधन—मैं यह न कर सकूंगा मातुल, आप ही जाकर उन्हें राजी कीजिए।

शकुनी—अच्छा भागिनेय, तुम्हारे प्रिय के लिये यह भी मैं करूंगा। चलो अब चलें।

(दोनों जाते हैं)

दृश्य दूसरा

स्थान—हस्तिनापुर का सभा भवन।

समय—प्रातः काल।

(महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म द्रोण आदि यथा स्थान बैठे हैं। पाण्डव आकर अपने स्थान पर बैठते हैं। महिलाएं सभा भवन के झरोखों में बैठी हैं। शकुनी, दुर्योधन और कर्ण एक स्थान पर बैठ कर परामर्श कर रहे हैं। विदुर महाराज धृतराष्ट्र के निकट बैठे हैं।)

शकुनी—महाराज युधिष्ठिर, आपने हमारे द्यूत निमंत्रण को स्वीकार कर हमें चिर बाधित किया। अब सभा में सब लोग आ गये हैं। आप पासे फेंक और बाजी लगाकर खेल प्रारम्भ कीजिये।

युधिष्ठिर—गान्धार कुमार, यह द्यूत निन्दित और अनर्थ की जड़ है। फिर किस लिये तुम मुझे इसके लिए प्रेरित कर रहे हो। इसकी हार जीत में कुछ पराक्रम भी तो नहीं प्रदर्शित करना पड़ता जो क्षत्रियों का गुण है।

शकुनी—हे कौन्तेय, पासा पड़ना तो भाग्य के आधीन है। आप बड़े भाग्यशाली हैं। दो एक दांव लगा कर अपने भाग्य की परीक्षा कीजिए।

युधिष्ठिर—किन्तु बिना छल के द्यूत नहीं होता। हम न छल कपट ही जानते हैं, न म्लेच्छ भाषा ही में बातें कर सकते हैं। फिर हमें द्यूत में धन जीतने की भी कुछ इच्छा नहीं है।

शकुनी—महाराज, द्यूत में तो चतुर ही जन जीतता है। जो आपको अपनी चतुराई पर भरोसा नहीं हो और आप हार से भय खाते हों तो जाने दीजिये, इन्कार कर दीजिए

H1916

युधिष्ठिर—किन्तु मेरा यह व्रत है कि यदि कोई मुझे प्रेरित करे तो मैं फिर विमुख नहीं होता। जो हो। कहो, मुझसे खेलेगा कौन ? और बाज़ी कौन लगायेगा ?

दुर्योधन—राजन, बाज़ी मैं लगाऊँगा और मातुल शकुनी मेरी ओर से खेलेंगे।

युधिष्ठिर—एक आदमी की ओर से दूसरा खेले यह तो उचित नहीं। परन्तु ऐसा ही सही, खेल होने दो।

भीम—आर्य प्रसन्न हों तो निवेदन करूँ कि यहाँ तो सभी धूर्त ज्वारी इकट्ठे हैं। यह शकुनी गान्धार राज कपट द्यूत में महा चतुर है। फिर इसके साथ महाज्वारी राजा विविंशति, चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र, और जय जैसे धूर्त्त राजा भी उपस्थित हैं, इस लिये आप इस दुष्कर्म से विरत ही रहिये।

युधिष्ठिर—भाई, मैं इन धूर्त्त ज्वारियों को देख रहा हूँ। परन्तु क्या करूँ, मेरा नियम भंग नहीं हो सकता। सभी जगत दैव आधीन है। गान्धार राज, यह समुद्र में उत्पन्न उत्तम मणियों का बना हुआ स्वर्ण मण्डित मूल्यवान हार मैं बाजी पर लगाता हूँ। तुम क्या लगाते हो, बोलो ?

दुर्योधन—यह मेरे मणि मुक्ता और महा मूल्यवान रत्न हैं, मै इन सभी को दाव पर लगाता हूँ। मैं धन की हानि को कुछ नहीं समझता।

युधिष्ठिर—तब फैंको पासा।

शकुनी—यह लीजिये, मैं जीता।

युधिष्ठिर—अरे, तुम कपट का सहारा लेकर खेल खेल रहे हो। मेरे यहाँ हज़ारों स्वर्ण मुद्राओं से भरे हुए घड़े, अक्षय

सम्पत्ति से भरा ख़ज़ाना और मणि रत्न हैं। मैं सभी को दांव पर लगाता हूँ।

दुर्योधन—यही मेरा भी वचन रहा। फेंको पासा।

शकुनी—(पासा फेंक कर) मैं जीता, मैं जीता।

युधिष्ठिर—अच्छी बात है। जलद गम्भीर घोष वाले बाल्हीक दत्त स्वर्ण मण्डित रथ को मैं इस बार दांव पर लगाता हूँ, जिस पर चढ़ कर हम यहां आये हैं।

दुर्योधन—मैं भी अपने आठ घोड़ों वाले स्वर्ण रथ को दांव पर लगाता हूँ। फेंको पांसा।

शकुनी—(पासा फेंक कर) मैं ही जीता।

युधिष्ठिर—तो इस बार मैं विविध रत्नाभरण भूषिता सुशिक्षिता अपनी एक सहस्त्र दासियों को दांव पर लगाता हूँ।

दुर्योधन—यवन, कम्बोज और गन्धार की सब दासियों को मैंने भी दांव पर लगाया। पांसा फेंको।

शकुनी—(पासा फेंक कर) यह लो, मैं जीता, मैं जीता।

युधिष्ठिर—मैंने अपने एक लाख दास भी दांव पर लगाये।

दुर्योधन—दासों की मेरे पास भी कमी नहीं है। मैं भी उन्हें दांव पर लगाता हूँ। फेंको पाँसा।

शकुनी—(पासा फेंक कर) वाह मैं जीता, मैं ही जीता।

युधिष्ठिर—मैं अपने मत्त, सुशिक्षित और शत्रु के नगरों को तहस-नहस करने वाले एक हज़ार हाथियों को दांव पर लगाता हूँ। प्रत्येक के साथ आठ-आठ हथिनियाँ भी हैं।

दुर्योधन—मैंने अपनी गज शाला के सम्पूर्ण हाथी दांव पर लगाये। फेंको पांसा।

शकुनी—(पासा फेंक कर) मैं जीता, मैं जीता।

युधिष्ठिर—मैं अपने स्वर्ण मण्डित दस हजार रथ और प्रति मास हजार मुद्रा वेतन पाने वाले वीर रथियों को दांव पर लगाता हूँ।

दुर्योधन—मैंने भी सब रथ और रथी दांव पर लगाये।

शकुनी—(पासा फेंक कर) हा, हा, हा मैं जीता, मैं जीता।

युधिष्ठिर—तब चित्ररथ गन्धर्व के दिये हुए तीतर के रंग के आठ सौ घोड़े मैंने दाँव पर लगाये।

दुर्योधन—अपनी अश्व शाला के सम्पूर्ण अश्व मैंने दांव पर लगाये। फेंको पांसा।

शकुनी—(पासा फेंक कर) मैं जीता, मैं जीता।

अर्जुन—आर्य, बस कीजिए, बहुत हुआ।

युधिष्ठिर—मेरे यहां लोहे और ताम्बे के भाण्डों में रखी चार सौ निधियाँ हैं। वह मैं दाँव पर लगाता हूँ।

दुर्योधन—मैं अपना सम्पूर्ण कोष दाँव पर लगाता हूँ।

शकुनी—(पासा फेंक कर) इस बार भी मैं ही जीता।

धृतराष्ट्र—कौन जीता, कौन जीता।

विदुर—वही कपट धूर्त शकुनी द्यूत में जीत रहा है। राजन्, अब आप यह खेल बन्द कीजिए। यहां यह वैर का बीज बोया जा रहा है। इससे दुर्योधन अपनी भलाई अपने हाथ से खो रहा है। देखो, भीम और अर्जुन की भृकुटियाँ चढ़ी हुई हैं।

दुर्योधन—मैं जानता हूँ कि आप किनकी भलाई चाहते हैं। परन्तु हमें आपके उपदेशों की आवश्यकता नहीं है। मातुल, आप पांसा फेंकिये। आप क्या दाव पर लगाते हैं महाराज युधिष्ठिर ?

युधिष्ठिर—मैं पर्णाशा नदी तक और सिंध की पूर्वी सीमा तक का सारा देश ब्राह्मणों और उनके धन को छोड़ कर नगर गांव जनपद क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रजा की सम्पूर्ण सम्पत्ति को दॉव पर लगाता हूँ।

दुर्योधन—मैं भी अपना उत्तर कुरु तक का सम्पूर्ण कुरु-जॉगल देश दाँव पर लगाता हूँ।

शकुनी—(पासा फेंक कर) जीत गया मैं, मैं सम्पूर्ण देश जीत गया।

युधिष्ठिर—मैं अपने सिंह विक्रम नकुल और प्रियदर्शी भाई सहदेव को दांव पर लगाता हूँ।

दुर्योधन—मैं भी अपने दश महारथी भाईयों को दाँव पर बदता हूँ।

शकुनी—(पासा फेंक कर) मैं ही जीता। मैं ही जीता। अब कहो महाराज, शायद आप भीम और अर्जुन को दाँव पर नहीं लगाना चाहते !

युधिष्ठिर—अरे सुबल के पुत्र, तू क्या भाइयों में फूट डलवाना चाहता है। मैं त्रिभुवन में अद्वितीय योद्धा अर्जुन और भीम विक्रम भीमसेन को भी दांव पर लगाता हूं।

शकुनी—(पासा फेंक कर) मैं जीत गया, मैं जीत गया।

युधिष्ठिर—तो मैं अपने को दाँव पर लगाता हूं। हारूँगा तो दास हो जाऊँगा।

शकुनी—(पासा फेंक कर) हे कुन्ती पुत्र, मैंने तुम्हें भी जीत लिया। कहो, अब क्या दाँव पर लगाते हो। मेरी समझ में तो अब आप पांचाली द्रोपदी को दांव पर लगायेंगे !

युधिष्ठिर—अच्छी बात है। मैं कमल नयनी कमलगन्धा प्रिया त्रिभुवन सुन्दरी द्रोपदी को दाँव पर लगाता हूँ।

भीष्म—अनाचार है अनाचार है। ठहरो युधिष्ठिर।

द्रोण—महाराज धृतराष्ट्र, इस अनर्थ को रोकिये।

धृतराष्ट्र—क्या जीत गये, क्या जीत गये ?

शकुनी—(पासा फेंक कर) जीत गया, मैं जीत गया।

दुर्योधन—विदुर, तुम अभी जाकर भाग्यहीना द्रोपदी दासी को यहाँ सभा में ले आओ।

(सब राजा)—शान्तं पापम् शान्तं पापम्।

विदुर—युधिष्ठिर अपने को हारने पर द्रोपदी को दाँव पर लगाने का अधिकार नहीं था। वह दासी नहीं हो सकती।

दुर्योधन—दुःशासन, तुम द्रोपदी को बलपूर्वक यहाँ ले आओ, उसे जो कुछ कहना है सभा में कहे।

(दुःशासन जाता है और द्रोपदी को खींचता हुआ लाता है)

द्रोपदी—कौरवों की इस पाप सभा में मैं स्वयं उपस्थित होती हूँ। आज भरत पुत्र के क्षत्रियों का धर्म क्षय हो गया। ये भीष्म पितामह, गुरु द्रोण और महात्मा विदुर भी पुरुषार्थ-हीन हो गये। तभी तो आज यह अनर्थ हो रहा है।

दुःशासन—(बाल खींच कर) अरी दासी लज्जा न कर, यहाँ महाराज दुर्योधन के सामने आ।

द्रोपदी—अरे नराधम, मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि तेरे गर्म रक्त से ही मैं इन केशों का सिंचन करके इन्हें बाँधूंगी। क्या

पितामह अब भी मौन बैठे रहेंगे। महाराज मैं आपकी सुषा इस प्रकार अपमानित हो रही हूँ।

भीष्म—पांचाली, मैं कुछ कहने में असमर्थ हूँ।

द्रौपदी—हाय, ये वीर पाण्डव किस प्रकार दीन भाव से बैठे मेरी दुर्दशा देख रहे हैं। वे धर्म बन्धन में बँधे हैं।

भीम—आर्य, अब मैं सहन नहीं कर सकता। आपने जिन हाथों जुए में द्रौपदी को हारा है उन्हें मैं आग से जलाऊँगा। सहदेव, आग लाओ।

अर्जुन—भाई, इस विपत्ति में शत्रुओं के हास्यास्पद मत बनो।

विकर्ण—हे सभासद विद्वानों और नरपतियों सुनो कल्याणी द्रौपदी आपसे पूछती है कि युधिष्ठिर ने जब पहले अपने को दाँव पर लगा दिया, तब वे उसे दाँव पर लगाने का क्या अधिकार रखते थे। हे कौरवों, इसका उत्तर दो। भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य भी इसका उत्तर दें।

कर्ण—अरे विकर्ण, तुम क्या इस सभा में सब से अधिक विज्ञ हो? दुःशासन, ये पाण्डव और द्रौपदी दाव में जीते हुए दास हैं। इनके सब कपड़े उतार लो।

युधिष्ठिर—हम पाँचों पाण्डव अपने उत्तरीय स्वयं उतार देते हैं। भाइयो, धर्म का पालन करो।

(सब वस्त्र उतार कर खड़े हो जाते हैं)

दुःशासन—(द्रौपदी का वस्त्र खींच कर) अरी दासी, इस पाटम्बर को उतार।

द्रौपदी—हे कृष्ण वासुदेव, अब तुम्हीं मेरी लाज रखो।

भीमसेन—अरे पृथ्वी के राजा लोगो और अन्तरिक्ष के

देवताओं सुनो, मैं यदि इस पापी दुःशासन के हृदय का रक्त चीर कर न पीऊँ तो पूर्वजों की गति को न प्राप्त होऊँ।

कर्ण—बहुत हुआ दुःशासन, इस दासी को तुम अन्तःपुर में ले जाओ।

दुःशासन—(खींचते हुए) चल री दासी।

द्रौपदी—ठहर रे अधम। मैं कुरुकुल के गुरुजनों को प्रणाम कर लूं। (आगे बढ़ कर) हे कुरुकुल के महाराज, मैं आपकी पुत्र वधू पांचाली आपको प्रणाम करती हूँ।

धृतराष्ट्र—हे पतिव्रता, वर माँगो?

द्रौपदी—हे भरतवंश विभूषण, मुझे वर दीजिए कि धर्मात्मा युधिष्ठिर दास भाव से छूट जांय।

धृतराष्ट्र—ऐसा ही हो, और दूसरा वर माँगो कल्याणी?

द्रौपदी—तो महाराज, अपने शस्त्रास्त्र सहित शेष पाण्डव भी दास भाव से मुक्त हो जाँय।

धृतराष्ट्र—ऐसा ही हो। पर तुम मेरी सब बहुओं में श्रेष्ठ हो, तुम और एक वर मांगो।

द्रौपदी—भगवन् लोभ से महा अनर्थ होता है, इतना ही यथेष्ट है।

कर्ण—अरे, स्त्री ने पाण्डवों को उबारा।

भीम—हाय, हाय।

युधिष्ठिर—भाई शान्त हो। आओ, हम महाराज धृतराष्ट्र को अभिवादन करें। (सब धृतराष्ट्र के निकट जाते हैं)

युधिष्ठिर—महाराज, यह पाण्डु पुत्र आपका अनुगत युधिष्ठिर आपको अभिनन्दन कर यह पूछता है कि हमें आज्ञा दीजिये कि हम क्या करें?

धृतराष्ट्र—हे अजातशत्रु, तुम्हारा कल्याण हो। मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम अपना सब धन लेकर पहले की भांति राज्य करो।

युधिष्ठिर—जैसी आज्ञा।

(द्रौपदी और भाइयों सहित जाने लगते हैं)

दुर्योधन—यह अत्यन्त अन्याय है महाराज। हमने न्याय-पूर्वक पाण्डवों का सर्वस्व जीत लिया है।

धृतराष्ट्र—मैंने उनका धन रत्न सब लौटा दिया।

शकुनी—महाराज प्रसन्न हों। आज्ञा दें कि एक बार फिर पासा डाला जाय। उसमें राज, कोष, दाव पर नहीं लगेगा। यह प्रतिज्ञा रहेगी कि जो हारे वह बारह बरस बनवास करे और तेरहवें वर्ष गुप्तवास करे। तेरह वर्ष बीत जाने पर राज्य लौटा दिया जाय।

दुर्योधन—मुझे स्वीकार है।

विदुर—महाराज, यह फिर पाप की जड़ जमी।

सब राजा—अनर्थ, अनर्थ।

दुर्योधन—महाराज, आज्ञा दीजिये, युधिष्ठिर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र—युधिष्ठिर की क्या इच्छा है?

युधिष्ठिर—मैं प्रेरित होने पर इन्कार नहीं कर सकता, मैं प्रस्तुत हूँ।

धृतराष्ट्र—तो ऐसा ही हो, ऐसा ही हो।

दुर्योधन—तो मातुल, पासा फेंकिये।

युधिष्ठिर—फेंकिये पासा।

शकुनी—(पासा फेंक कर) मैं जीत गया, मैं जीत गया।

दुर्योधन—(हँस कर) महाराज युधिष्ठिर, राजसूय यज्ञ के

समय जिस मृगचर्म को पहनने का आपने अभ्यास किया था, वही अब पहनिये। अरे दासों, इन प्रतापी पाण्डवों के सब राज-परिच्छद उतार लो और इन्हें मृगछाला पहना दो और द्रौपदी को भी मृगछाला दो।

भीमसेन—दुर्योधन, इसी गदा से मैं तेरा उरू भंग करूंगा।

दु:शासन—अरे बैल, अरे बैल!

भीमसेन—मैं तो तेरे हृदय के रक्त को पान करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

युधिष्ठिर—चलो भाई, चलें। अब विलम्ब क्यों?

(जाते हैं)

दृश्य तीसरा

स्थान—गंगा का किनारा—मध्याकाल।

(पाण्डव द्रौपदी सहित पाव-प्यादे गंगा तट पर पहुँचते हैं। साथ में धौम्य पुरोहित और बहुत से नगर निवासी हैं।)

युधिष्ठिर—प्रिय नगर निवासियों, बहुत हुआ, हमारे प्रेम से आप यहाँ तक कष्ट करके आये। अब सब अपने २ घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करो।

पुरजन—महाराज की दुहाई, हम महाराज की सेवा ही में रहा चाहते हैं।

युधिष्ठिर—किन्तु अब हम महाराज कहाँ हैं, वनवासी हैं। हमारे साथ रहने से क्या लाभ है?

पुरजन—आप में दिव्य गुण हैं, आप धर्मपूर्वक प्रजा पालन जानते हैं। अच्छी और बुरी संगति ही से मनुष्य की प्रकृति में गुण दोष आते हैं। तिल जल, भूमि, वस्त्र जैसे फूलों के साथ रहने से सुवासित हो जाते हैं, उसी प्रकार अच्छी संगति से मनुष्य गुणी हो जाता है। आपके साथ रहने से हमें अनेक गुण प्राप्त होंगे।

(बहुत से ब्राह्मण आते हैं)

ब्राह्मण—महाराज की जय हो, हम सब भी आपके साथ ही रहेंगे।

युधिष्ठिर—(खड़े होकर दुखित भाव से) हमारा राज्य और धन छिन गया है। फिर हम आप की सेवा कैसे करेंगे।

ब्राह्मण—हम कन्द मूल फल पर संतोष करेंगे।

युधिष्ठिर—परन्तु शोक संतप्त मेरे ये वीर भाई तो आपको कन्द मूल फल से भी संतुष्ट न कर सकेंगे।

ब्राह्मण—हम स्वयं अपना आहार ढूंढ़ लाया करेंगे। और उत्तम कथा वार्ता सुना कर आपका चित्त प्रसन्न करेंगे।

(युधिष्ठिर दुःखी भाव से निरुत्तर हो पृथ्वी पर बैठ जाते हैं)

शौनक ऋषि—महाराज, शोक और भय से मूर्ख ही घबराते हैं। ज्ञानी नहीं।

युधिष्ठिर—मैं अपने लिए दुखी नहीं हूँ। इन तपस्वी ब्राह्मणों के लिये दुखी हूँ। इनकी सेवा मैं निर्धन कैसे करूंगा।

शौनक—आप तप से इनकी सेवा कीजिए। मैं ऐसी व्यवस्था करूंगा कि हज़ार ब्राह्मणों को नित्य भोजन मिलता रहे। अब चलो—काम्यक वन में हम लोग आराम से रह सकेंगे। वहाँ मीठे जल की नदियाँ और स्वादिष्ट फल मूल हैं, तथा ऋतु सुहावनी है।

युधिष्ठिर—तब ऐसा ही सही। भाई अर्जुन, कृष्ण को अपनी इस विपत्ति की सूचना दे दो, वे शाल्व से युद्ध करने गये हैं, वहाँ से लौटते ही काम्यक वन में हमसे मिलें। तब आवश्यक परामर्श करके कर्तव्य की स्थापना की जाय।

अर्जुन—बहुत अच्छा, मैं अभी दूत भेजता हूँ।

(सब जाते हैं)

———

दृश्य चौथा

स्थान—दुर्योधन का राजप्रासाद।

(दुर्योधन, कर्ण, शकुनी और दुःशासन परामर्श कर रहे हैं।)

दुर्योधन—आज मैं प्रसन्न हूँ। बहुत प्रसन्न, राजसूय में किये हुए अपमान का ठीक बदला चुकाया जा रहा है। मेरा उपहास करने वाली द्रौपदी को एक वस्त्रा होने पर भी सभा में नंगी करके घसीट लाया गया और नये साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले पाण्डव दर २ भीख माँगते फिरते हैं।

कर्ण—परन्तु महाराज, पाण्डव पुरुषार्थी जीव हैं, अवधि समाप्ति पर वे अवश्य उपद्रव करेंगे।

शकुनी—अरे, क्या अब वे हमारे सम्मुख आने का साहस करेंगे। वे भिखारी हैं, भिखारी ही रहेंगे।

(द्रोण आते हैं। सब उठकर प्रणाम करते हैं)

द्रोण—शकुनी, ऐसा क्यों कहते हो, क्या कुरुराज दुर्योधन अपनी प्रतिज्ञा पालन न करेंगे?

दुर्योधन—आचार्य, कुरुकुल का एक अधिपति मैं ही हूँ। युधिष्ठिर नहीं।

द्रोण—क्यों नहीं? क्या वह तुम्हारा भाई नहीं।

दुर्योधन—नहीं आचार्य? पाण्डव हमारे भाई नहीं हैं। वे अज्ञात पुरुषों की जारज संतान हैं। फिर भाई होने से ही क्या? क्या भाई को राज्य बाँटा जाता है? फिर तो मेरे राज्य के एक सौ पांच भाग करने होंगे।

द्रोण—पुत्र कुरुराज, परन्तप कुरुकुल पति धृतराष्ट्र ने उन्हें खाण्डव प्रस्थ का राज्य दिया था, फिर प्रलाप से अब क्या? यदि वे प्रतिज्ञा पूरी करके आ जांय।

दुर्योधन—तो देखा जायगा। आचार्य, वीरभोग्या वसुन्धरा।

द्रोण—पुत्र सुयोधन, सत्य-धर्म, प्रेम और कर्त्तव्य को विचारो। तुम प्रतापी कुरुकुल के प्रदीप हो। (जाते हैं।)

दुर्योधन—अरे! आचार्य रुष्ट हो गये।

कर्ण—उन्हें मना लिया जायगा। वे तो सदैव ही पाण्डवों के गीत गाते हैं।

शकुनी—क्यों नहीं गावेंगे, क्या वे भूल जावेंगे कि पांचाल राज को बन्दी बना लाकर अर्जुन ने उनके मान की रक्षा की थी।

कर्ण—सो अब वे पाण्डवों का हित सोचें तो इसमें आश्चर्य क्या?

दुर्योधन—किन्तु हमें आचार्य को मनाना पड़ेगा।

शकुनी—मूर्खता की बातें हैं, अर्थस्य पुरुषो दासः।

कर्ण—यह तो ठीक है मामा, परन्तु आचार्य तेजवान-

पुरुष हैं, फिर उनके पुत्र अश्वत्थामा त्रिविक्रम पुरुष हैं। उन्हें संतुष्ट रखना ही होगा।

शकुनी—सो ब्राह्मण को संतुष्ट रखना कुरुराज जानते हैं, मिष्टान्न भोजन और स्वर्ण दक्षिणा।

दुर्योधन—(हँस कर) और विनम्र प्रणाम।

शकुनी—बस, बस, सब कुछ हो गया। हाँ—क्यों न एक बार वन में चलकर पाण्डवों की दुर्दशा को आंखों से देखा जाय ?

दुःशासन—वह इन्द्रप्रस्थ के मय दैत्य निर्मित सभा-भवन में महाराज का उपहास करने वाली दासी द्रौपदी अब किस प्रकार वन की पर्णकुटी में विहार कर रही है, देखना चाहिये।

दुर्योधन—(हँस कर) तब फिर ऐसा ही हो, मृगया की तैयारी करो।

(सब जाते हैं)

दृश्य पाँचवा

(स्थान द्वैतवन—पाण्डव और द्रौपदी अपनी कुटीर पर बैठे वार्तालाप कर रहे हैं।)

द्रौपदी—महाराज, आपका और मेरा दुर्योधन ने इतना अपमान किया, आप अस्त्र शस्त्रों के महाज्ञाता धनुर्धर हैं। युद्ध में आपके सम्मुख देव, दैत्य, मानुष, अमानुष कोई ठहर नहीं सकता, फिर क्या कारण है कि चुपचाप कष्ट सह रहे

हैं। आप क्षात्र तेज को भूल गये? आप क्षत्रिय होते हुए भी क्रोध शून्य हैं यह आश्चर्य की बात है। जो क्षत्रिय अपने शत्रु को सदा क्षमा करता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। क्षमा और क्रोध दोनों ही अपने अपने स्थान पर शोभा देते हैं।

युधिष्ठिर—प्रिये, क्रोध मनुष्य के नाश का कारण है। क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य ऐसे काम कर डालता है कि पीछे उसे पछताना पड़ता है। जो बुद्धि के द्वारा क्रोध को रोक लेता है वह गुणवान और तेजस्वी हो जाता है। क्रोध को रोकने ही से उन्नति ऐश्वर्य और सुख प्राप्त हो सकते हैं।

द्रौपदी—परन्तु बलहीन व्यक्ति की शोचनीय दशा हो जाती है।

युधिष्ठिर—यह ठीक है, परन्तु जो धर्म में रत हैं उनका कल्याण ही होता है।

द्रौपदी—परन्तु कर्म करना और पुरुषार्थ में लगे रहना ही धर्म है। कर्म ही से सिद्धि प्राप्ति होती है।

युधिष्ठिर—फल का विचार छोड़ कर्मरत होना ही धर्म है।

भीम—(ठण्डी साँस लेकर) महाराज, आपके धर्म ही के कारण हम यह कष्ट भोग रहे हैं। जिस धर्म से बन्धुओं को कष्ट मिले वह धर्म नहीं व्यसन है। धर्म से तो काम और अर्थ की प्राप्ति होनी चाहिए। हमारा धर्म तो युद्ध है।

युधिष्ठिर—(दुःखित होकर) तुम्हारा दुःख तो प्रकट है, परन्तु मैं सत्य को नहीं छोड़ूँगा। हमें तेरह वर्ष प्रतीक्षा करनी ही होगी।

भीम—कौन जाने हम तेरह वर्ष जीवित भी रहें या नहीं! हमें युद्ध करके अपना राज्य ले लेना चाहिए।

युधिष्ठिर—भाई भीम, तुम बिना आगा पीछा सोचे केवल अपने बल पर यह कह रहे हो, परन्तु दुर्योधन धन मान मित्र से सम्पन्न है, उसके साथ बहुत भारी २ योद्धा हैं, उन्हें मारे बिना दुर्योधन को मारना सम्भव नहीं है, इसलिये हमें इसकी तैयारी की आवश्यकता है। कृष्ण को आने दो। वे हमारे मित्रों और सहायकों को तैयार करेंगे और अर्जुन को गन्ध मादन पर्वत लाँघ कर इन्द्र के पास जा दिव्यास्त्रों की प्राप्ति करनी चाहिए। इस बीच दुर्मद दुर्योधन ऐश्वर्य से विमोहित हो अप्रिय हो जायगा। तब हमारा यन्त्र सफल होगा।

सब—जैसी धर्मराज की इच्छा।

दृश्य-छठा

स्थान—द्वैतवन, पाण्डवों की कुटीर, समय—मध्याह्न
(युधिष्ठिर और द्रौपदी बात कर रहे हैं।)

द्रौपदी—क्या कारण है इतना विलम्ब हो गया, परन्तु अभी तक मध्यम और धनञ्जय आखेट से नहीं लौटे।

युधिष्ठिर—वे अब आते ही होंगे। परन्तु यह कोलाहल कैसा है?

द्रौपदी—(उद्विग्न होकर) इस शान्त बन में भी उपद्रवों की आशंका है? अरे यह तो कहीं युद्ध हो रहा है।

युधिष्ठिर—(उठकर) देखूँ तो, कहीं भीम और अर्जुन किसी संकट में तो नहीं फँस गये।

द्रौपदी—यह तो हजारों मनुष्य आर्तनाद कर रहे हैं।

युधिष्ठिर—है तो ऐसा ही। वह एक तपस्वी आ रहा है।

(तपस्वी आता है)

तपस्वी—महाराज की जय हो। यहाँ घोर युद्ध हो रहा है।

युधिष्ठिर—युद्ध ? किससे ?

तपस्वी—अभी दुर्योधन और सब कौरव अपनी बड़ी भारी सेना लेकर दास दासियों सहित वन विहार को आये हैं। उनके साथ एक भारी सुसज्जित सेना, दूकानदार, हजारों दास दासियाँ, वेश्या, शिकारी आदि हैं।

द्रौपदी—समझी, हम बनवासियों को अपने राजसी ऐश्वर्य दिखा कर पीड़ित करने।

युधिष्ठिर—फिर ?

तपस्वी—महाराज, पहले तो उन्होंने मनोहर निवास बनवाया, गायें बछड़ों बैलों की जाँच की। दागने नाथने योग्य बछड़े दागे और नाथे गये। फिर घोसी युवतियों का नृत्यगान हुआ, शिकार विहार चला। इसके बाद आपके आश्रम के सम्मुख ही सरोवर के उस पार वे जलविहार भवन बनवाने लगे तथा जल विहार करने लगे।

द्रौपदी—अच्छा, हमारी कुटी के सम्मुख ही ?

तपस्वी—इसी समय गन्धर्वराज चित्ररथ अप्सराओं सहित जल विहार को आया। और उसके गन्धर्वों ने कौरवों को सरोवर के तट से खदेड़ दिया।

युधिष्ठिर—इसके बाद ?

तपस्वी—इस पर कौरव लड़ पड़े। खूब युद्ध हुआ, गन्धर्वों

ने कौरवों को पकड़ लिया। वे उन्हें स्त्री बान्धवों सहित बाँध कर गन्धर्व लोक को ले जा रहे थे।

युधिष्ठिर—स्त्री बान्धवों सहित बाँध कर? अरे! यह तो कुल का अपमान हुआ।

द्रौपदी—परन्तु महाराज, वे शत्रु हैं।

युधिष्ठिर—प्रिये, अन्ततः कौरव हमारे भाई हैं। कौरव कुल की स्त्रियों का अपमान मैं नहीं सह सकूंगा। तो अब?

तपस्वी—महाराज, उधर से महाराज भीम और अर्जुन आ रहे थे, उन्होंने गन्धर्वराज से उन्हें छोड़ देने को कहा, पर उन्होंने नहीं माना।

युधिष्ठिर—क्या अर्जुन का आदेश!

तपस्वी—हाँ महाराज, तब महाराज धनंजय को गाण्डीव चढ़ाना पड़ा, दोनों पाण्डव गन्धर्वों पर पिल पड़े।

युधिष्ठिर—अरे, तो युद्ध हुआ? फिर?

तपस्वी—भीषण युद्ध के बाद गन्धर्वों ने माया युद्ध प्रारंभ किया। इस पर पार्थ ने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग कर गन्धर्वों को परास्त कर दिया। अन्त में गन्धर्व राज चित्रसेन ने अर्जुन से क्षमा माँग ली और कौरवों को छोड़ दिया।

युधिष्ठिर—यही अर्जुन का शौर्य है। तो····

तपस्वी—महाराज, अब मध्यम और पार्थ गन्धर्वराज तथा कौरवों सहित इधर ही आ रहे हैं।

युधिष्ठिर—तो द्रौपदी, तुम उन सबका यथोचित आतिथ्य करने की व्यवस्था करो।

द्रौपदी—क्या कौरवों का भी?

युधिष्ठिर—अवश्य, वे हमारे भाई हैं और अतिथि हैं। पाण्डव अतिथि पूजन का व्यतिक्रम नहीं कर सकते।

(भीम, अर्जुन, गन्धर्वराज और कौरव आदि आते हैं)

युधिष्ठिर—स्वागत, सब का स्वागत।

चित्ररथ—धर्मराज आपकी जय हो।

युधिष्ठिर—गन्धर्वराज, आप अर्जुन की अविनय से अप्रसन्न तो नहीं हैं।

चित्ररथ—नहीं धर्मराज, हम परम मित्र हो गए हैं।

युधिष्ठिर—सुन कर प्रसन्न हुआ, भाई दुर्योधन स्वागत। आओ आलिङ्गन करो।

दुर्योधन—(लज्जित होकर) हाय, मैं उपवास करके प्राण त्यागूंगा।

युधिष्ठिर—(आलिङ्गन करके) इतनी आत्मप्रतारणा क्यों? आओ बैठो। भाई भीमार्जुन सहदेव नकुल इन सब मान्य अतिथियों का तन मन से सत्कार करो।

सब—जैसी आज्ञा।

(जाते हैं)

दृश्य सातवां

स्थान—गहन वन। समय—अपरान्ह।

(एक बूढा ब्राह्मण अपने तीन पुत्रों और ब्राह्मणी के साथ तेजी से जा रहे हैं।)

ब्राह्मण—जल्दी जल्दी चलो।

ब्राह्मणी—किस लिये आर्य पुत्र?

ब्राह्मण—क्या तुम भूल गईं, जलकिन्न मुनि ने कहा था कि यह बन राक्षसों से परिपूर्ण है।

एक पुत्र—यह पक्षियों और मृगों से परिपूर्ण जन मानव शून्य अन्धकारमय वन चारों ओर से पर्वत शृंङ्ग से घिरा हुआ अति दुर्गम प्रतीत होता है।

दूसरा—पिता देखो तो, यह प्रभात के सूर्य के समान तेजवान लम्बी भोंह और बड़ी बड़ी आंखों वाला काले मेघ के समान भीमकाय पुरुष हमारे पीछे लगा है।

तीसरा—अरे, इसके दांत कैसे चमक रहे हैं और हाथी के सूंड़ के समान अपने भुजदण्डों को ऊंचा किये धूम्रपूर्ण अग्नि की भांति क्यों हमारे पीछे २ आ रहा है।

ब्राह्मण—पुत्रों, जल्दी चलो जल्दी।

ब्राह्मणी—आर्य पुत्र क्या डर गये हैं?

ब्राह्मण—प्रिये, मैं मन्द भागी हूँ।

ब्राह्मणी—तो हम सहायता के लिये चिल्लावें।

प्रथम पुत्र—माता, कौन इस विजन वन में हमारा सहायता करेगा?

ब्राह्मण—पुत्रों, जल्दी चलो जल्दी।

(पीछे २ घटोत्कच आता है)

घटोत्कच—ठहरो ब्राह्मण।

ब्राह्मण—तुम हमसे क्या चाहते हो?

घटोत्कच—केवल एक पुत्र।

ब्राह्मण—किस लिये?

घटोत्कच—माता के भोजन के लिये।

ब्राह्मण—किन्तु पुरुष, मैं वेद पाठी ब्राह्मण हूँ।

घटोत्कच—इसी से केवल एक पुत्र लेकर सबको अभय।

ब्राह्मण—तो मुझे ले जाओ।

घटोत्कच—तुम बूढ़े हो।

ब्राह्मणी—नहीं, कुल रक्षा के लिये मैं अपना शरीर देती हूँ।

घटोत्कच—नहीं, नहीं, स्त्री नहीं चाहिए।

ज्येष्ठ पुत्र—तब मैं,

मध्यम पुत्र—कदापि नहीं। ज्येष्ठ भ्राता लोक और वंश में श्रेष्ठ और पितरों का प्रिय होता है, इसलिये मैं जाऊंगा।

कनिष्ठ पुत्र—मैं कनिष्ठ "निकृष्ट हूँ। इससे मेरा ही अधिकार अधिक है।

ब्राह्मण—मैं ज्येष्ठ को नहीं दे सकता।

ब्राह्मणी—मैं भी कनिष्ठ को नहीं जाने दूंगी।

मध्यम—बस तो ठीक हो गया, मैं तैयार हूँ।

घटोत्कच—चलो तब।

मध्यम—आज वंश रक्षा करने से मेरा जीवन धन्य हुआ। तात, अभिवादन करता हूँ।

ब्राह्मण—अरे पुत्र, तुम्हें ब्रह्मलोक प्राप्त हो।

मध्यम—अनुगृहीत हुआ माता, अभिवादन करता हूँ।

ब्राह्मणी—अरे पुत्र, चिरंजीवी रहो।

मध्यम—आर्य, अभिवादन करता हूँ।

ज्येष्ठ—आओ वत्स, आलिङ्गन कर लो।

मध्यम—अनुगृहीत हुआ।

तृतीय—आर्य, अभिवादन करता हूँ।

मध्यम—तुम्हारा कल्याण हो। अरे पुरुष, मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

घटोत्कच—जल्द कहो।

मध्यम—यहाँ कोई जलाशय हो तो मैं अपनी पिपासा शान्त कर लूं।

घटोत्कच—इसमें हानि नहीं है। परन्तु विलम्ब न हो।

मध्यम—मैं अभी आया।

(जाता है)

ब्राह्मण—हाय, हाय, हम लुट गये।

ब्राह्मणी—अरे पुत्र, क्या चले ही गये?

घटोत्कच—बहुत देर हो रही है। ब्राह्मण, उसे पुकारो।

ब्राह्मण—तुम्हारा यह वचन तो राक्षसों से भी अधिक निष्ठुर है।

घटोत्कच—तो मैं ही पुकारूं, उसका नाम बताओ।

ब्राह्मण—वह नाम भी मैं उच्चारण नहीं कर सकता।

घटोत्कच—ब्राह्मण पुत्र तुम्हीं बताओ।

ज्येष्ठ—(रोकर) बेचारा मध्यम।

घटोत्कच—ओ मध्यम, जल्दी करो, विलम्ब मत करो।

(नेपथ्य में.......भीमसेन)

अरे, यह किसने मुझे पुकारा है?

(पुकार कर) बड़ी देर हो रही है, ओ मध्यम जल्दी आओ।

(भीमसेन आते हैं)

भीमसेन—कौन मुझे पुकारता है?

घटोत्कच—तुम्हें, नहीं, नहीं, आप कौन हैं?

भीमसेन—मैं शत्रुओं में अवध्य मध्यम पाण्डव हूँ।

घटोत्कच—आप भी मध्यम हैं?

भीमसेन—पंच भूतों में वायु का पुत्र होने के कारण मैं मध्यम, पृथ्वी के छत्रधारियों में भी मैं मध्यम हूँ।

ब्राह्मण—मालूम होता है, प्रभु ने हमारा दुख दूर करने इस वीर केसरी को यहाँ भेज दिया है।

(मध्यम ब्राह्मण पुत्र आता है)

मध्यम—हे पुरुष, मैं आ गया।

ब्राह्मण—हे वीर, ब्राह्मण की रक्षा करो।

भीमसेन—ब्राह्मण को अभय। आप कौन हैं?

ब्राह्मण—मैं धर्मात्मा कुरुराज युधिष्ठिर की प्रजा हूँ। कुरु जाङ्गल के यूपग्राम का निवासी माठरस गोत्री ब्राह्मण हूँ।

भीमसेन—आपको भय क्या है, ब्राह्मण देवता?

ब्राह्मण—यह मेघखण्ड के समान बली, सिंह के समान पराक्रमी राक्षस पुरुष मेरे पुत्र को खाने की इच्छा से ले जा रहा है।

भीमसेन—क्यों पुरुष, ऐसा है?

घटोत्कच—ऐसा ही है।

भीमसेन—इसे छोड़ दो।

घटोत्कच—कदापि नहीं।

भीमसेन—क्यों नहीं?

घटोत्कच—मैं माता की आज्ञा के आधीन हूँ।

भीमसेन—अच्छा, तो तुम भी गुरुजन की प्रतिष्ठा जानते हो? तुम्हारी माता का नाम क्या है?

घटोत्कच—देवी हिडम्बा।

भीमसेन—(हँस कर) तब ठीक है। तो वीर इस बालक को छोड़ दो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।

घटोत्कच—क्या आप? यह भी ठीक है।

मध्यम—कदापि नहीं। मैं अपने लिये आपको ऐसा संकट नहीं सहन करने दूंगा।

भीमसेन—नहीं, नहीं। आप ब्राह्मण और मैं क्षत्रिय हूँ।

घटोत्कच—तो चलिये आप।

भीमसेन—अच्छी बात है किन्तु पुत्र, मुझे बलपूर्वक उठा कर ले चलो।

घटोत्कच—पुत्र, कैसे कहा ।

भीमसेन—क्षत्रिय सारी प्रजा को पुत्र ही कहते हैं ।

घटोत्कच—तव बल से ।

भीमसेन—निसन्देह ।

घटोत्कच—तो लो शस्त्र ।

भीमसेन—मेरे ये स्वर्ण स्तम्भ से भुजदण्ड ही यथेष्ट हैं ।

घटोत्कच—ऐसा तो मेरे पिता ही कह सकते हैं ।

भीमसेन—तो उससे मुझे क्या ?

घटोत्कच—क्या गुरुजन निन्दा ?

(एक वृक्ष उखाड़ कर प्रहार करता है)

भीमसेन—(हँस कर, प्रहार रोकते हुए) वन का हाथी क्रुद्ध होने पर भी व्याघ्र को नहीं हरा सकता ।

घटोत्कच—तब इस शिलाखण्ड से मैं तुम्हें चकनाचूर करता हूँ । (एक बड़ी शिला ले फेंकता है । पर भीमसेन कौशल से बच जाते हैं)

भीमसेन—अब कहो ?

घटोत्कच—आप वीर पुरुष हैं । आइये, मैं मल्लयुद्ध में आपको पछाड़ूँगा । (भिड़ जाता है, परन्तु भीमसेन छूट जाते हैं)

भीमसेन—अब ?

घटोत्कच—बहुत हुआ । परन्तु आपने वचन दिया था ।

भीमसेन—यह ठीक है । अच्छा आगे २ चलो ।

(दोनों जाते हैं)

दृश्य आठवाँ

स्थान—वन के भीतर एक पर्वत कन्दरा में हिडम्बा का स्थान।
समय—अपराह्न।
(आगे २ घटोत्कच और पीछे २ भीमसेन आते हैं)

घटोत्कच—माता, अभिवादन करता हूँ। मैं मनुष्य को ले आया। तुम आहार करो।

हिडम्बा—चिरंजीवी रहो पुत्र, परन्तु मनुष्य कैसा है?

घटोत्कच—कहने को मनुष्य है, पर बल में अति मनुष्य है।

हिडम्बा—क्या ब्राह्मण है?

घटोत्कच—नहीं क्षत्रिय।

हिडम्बा—बूढ़ा तो नहीं है?

घटोत्कच—नहीं।

हिडम्बा—बालक है?

घटोत्कच—नहीं, नहीं, तुम देखो तो।

हिडम्बा—चलो देखें। (बाहर आती है। भीमसेन को देख कर)

हिडम्बा—अरे, यह क्या?

घटोत्कच—क्या हुआ?

हिडम्बा—पूज्य पुरुष!

घटोत्कच—किसका?

हिडम्बा—मेरा और तुम्हारा पुत्र!

घटोत्कच—कैसे?

हिडम्बा—आर्य पुत्र की जय हो। पुत्र, पिता को अभिवादन करो।

घटोत्कच—तात, मेरा अपराध क्षमा हो। मैं अभिवादन करता हूँ।

भीमसेन—तुम्हारा पराक्रम बढ़े पुत्र !

हिडम्बा—इस बन में आर्य पुत्र कैसे ?

भीमसेन—देवी हिडम्बा, विपत्ति काल अब बीत चला और सौभाग्य सूर्य का उदय होने वाला है। तब तुम्हारी और तुम्हारे वीर पुत्र की मुझे आवश्यकता होगी। मैं तुम्हें आमन्त्रित करने आया हूँ। और पुत्र घटोत्कच को भी निमन्त्रित करता हूँ।

घटोत्कच—तात, मेरी जब आवश्यकता हो आप मुझे स्मरण कीजिये, मैंने मन्त्र-तन्त्र आसुरी माया और शम्बर प्रयोग सीखे हैं। उनसे आप की सेवा करूंगा।

भीमसेन—पुत्र तुम्हारा कल्याण हो।

(जाता है)

दृश्य नवमा

स्थान—विराट नगर की श्मशान भूमि। **समय**—प्रातः काल।

(पाण्डवों का द्रोपदी धौम्य आदि परिवार सहित प्रवेश)

द्रोपदी—उदय काल में जिनकी कीर्ति समस्त संसार में फैली थी। जो कुरुकुल पति धर्मराज मणिमय कांचन प्रासाद में रहते थे। जब वे चलते थे तो इन के पीछे दस हज़ार योद्धा हाथी और उत्तम घोड़ों से जुते हुए स्वर्ण मण्डित तीस हज़ार रथ चलते थे। जैसे देवता कुबेर की उपासना करते हैं वैसे ही सब राजा और कौरव जिनकी उपासना करते थे। जिनके यहाँ अट्ठासी हज़ार स्नातक ब्राह्मणों की आजीविका चलती

थी। हाय, वेही धर्मराज कुरुकुल के अधिपति आज महावीर भाइयों सहित भाग्य दोष से धूलधूसरित नंगे पैर भटक रहे हैं।

युधिष्ठिर—हे कल्याणी, धैर्य धरो। संकट के बारह वर्ष हमने वन में कष्ट सह कर बिताये, अब एक वर्ष और है। अरे! प्रातः काल हो गया। यह तो श्मशान भूमि प्रतीत होती है, यह कौन सा देश है?

धौम्य—यही गुप्त राष्ट्र मत्स्य देश की राजधानी विराट नगरी है........

धौम्य—यही गुप्त राष्ट्र मत्स्य देश की राजधानी विराट नगरी है। यहाँ का राजा बली, धर्मात्मा और आपका मित्र भी है। अज्ञातवास को पूरा करने का यही उपयुक्त स्थान है।

युधिष्ठिर—इसी सघन शमी वृक्ष की छाया में बैठ कर हमें गुप्त मन्त्रणा करनी चाहिये।

सब—यही सब से अच्छा है। (बैठते हैं)

युधिष्ठिर—मैं पासा खेलने की विद्या जानता हूँ। इस लिए मैं कंक ब्राह्मण के नाम से विराटेश्वर की सभा का सभासद बन जाऊँगा। और राजा को पासा खिला कर रखूँगा।

भीमसेन—मैं रसोई बनाने में चतुर हूँ। मैं बल्लव नाम से राजा का रसोइया बन जाऊँगा।

अर्जुन—मैं हाथों में शंख और हाथी दाँत की चूड़ियाँ पहन कर सिर पर चोटी बाँधूंगा और वृहन्नला नाम से नपुंसक बन कर राजा के अन्तःपुर में नृत्य गीत की शिक्षा दूंगा।

नकुल—मुझे अश्व विद्या की जानकारी है। मैं घोड़ों को चलाना, सिखाना, उनकी नस्ल पहचानना तथा चिकित्सा

करना भली भाँति जानता हूँ। अतः राजा का ग्रन्थिक नाम का अश्वपाल बन जाऊँगा।

सहदेव—विराटेश्वर के पास एक लाख गौ हैं। मैं गौओं को दुहने और उनकी परीक्षा करने में चतुर हूँ। गौओं के चरित्र और मंगल लक्षण भी भली भाँति जानता हूँ। मैं उन शुभ लक्षण वाले बैलों को भी खूब पहचानता हूँ। जिनके मूत्र सूंघ कर वन्ध्या भी पुत्रवती हो जाती है। इसी से मैं तन्त्रिपाल नामक राजा का ग्वाला बन जाऊँगा।

द्रौपदी—मैं केशशृङ्गार भली भाँति जानती हूँ। अतः मैं राजा के अन्तःपुर में सैरन्ध्री दासी बन कर रह जाऊँगी। विराटेश्वर की रानी सुदेष्णा मेरी रक्षा करेंगी।

युधिष्ठिर—विधि की विडम्बना से जो जो हमें करना था, वह तो निश्चय हो गया। अब पुरोहित धौम्य सेवकों, रसोइयों, और द्रौपदी की दासियों के साथ द्रुपद के यहाँ जा कर रहें और हमारे अग्नि होत्र की रक्षा करें।

अर्जुन—और इन्द्रसेन आदि सारथि तथा अन्य सेवक खाली रथ लेकर द्वारिका चले जांय।

भीम—किसी के पूँछने पर सब कोई यही कहें कि पाण्डवों का हमें पता नहीं। वे हमें द्वैतवन में छोड़ कर न जाने कहाँ चले गये।

युधिष्ठिर—अब हमें यह विचारना है कि हम अपने शस्त्रास्त्र कहाँ रखें। शस्त्रास्त्र लेकर यदि हम नगर प्रवेश करेंगे तो हम तुरन्त ही पहचान लिये जायेंगे और हमें फिर बारह वर्ष वन में रहना पड़ेगा।

अर्जुन—हमें इसी सघन शमी वृक्ष पर अपने शस्त्रास्त्र छिपा देने चाहिये। इसकी शाखायें बड़ी भयानक हैं। इस

पर किसी का चढ़ना कठिन है। यह वृक्ष मार्ग से भी हट कर है। और यहाँ सर्प आदि जन्तु भी बहुत हैं। इसी की कोटर में हम शस्त्रास्त्रों को छिपा दें।

भीम—और एक मुर्दा लाकर इस वृक्ष पर लटका दें जिससे भयभीत होकर कोई इधर न आवे।

युधिष्ठिर—एक बात और। हम लोगों के एक एक गुप्त नाम भी होने चाहिये। वे क्रमशः जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल होंगे।

धौम्य—धर्मराज, तुमने ब्राह्मण, सुहृद, सेवक, वाहन, अस्त्र शस्त्र सबका भली भाँति प्रबन्ध कर लिया। मैं आशा करता हूँ कि अपनी विनय, धैर्य और बुद्धिबल से देशकाल के धर्माधर्म का विचार कर यह गुप्तवास निर्विघ्न पूरा करोगे।

युधिष्ठिर—ब्राह्मण—ऐसा ही होगा। अब आप इस दुख से हमें छुटकारा दिलाने के लिये जो कर्त्तव्य हो, करें।

धौम्य—ऐसा ही हो। तो अब सब कोई अपने २ गन्तव्य पर प्रस्थान करें। सबका कल्याण हो।

(सब परस्पर प्रेमालिङ्गन करके अपने २ मार्ग पर जाते हैं)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—हस्तिनापुर—गंगा का उपकूल। **समय**—प्रातःकाल।

(तीन स्नातक ब्राह्मणों का प्रवेश)

एक—इस यज्ञ से कुरुराज दुर्योधन का पृथ्वी पर धर्म वैभव बढ़ जायगा। ब्राह्मणों के भोजन से बचे हुए अन्न के ढेर लगे हैं। यज्ञ धूम के गन्ध से पुष्प गन्ध म्लान हो गई है। सिंहों ने हिंसा को त्याग दिया। वे मृगों के साथ वन में विचरण करते हैं। ऐसा दीख पड़ता है जैसे राजा के साथ सचराचर विश्व ने ही धर्मदीक्षा ले ली हो।

दूसरा—ऐसा ही है। सःहविष्य से अग्नि मुख देवताओं को और धन से ब्राह्मणों को, स्वर्ण दान मान सत्कार से पशु-पक्षी मनुष्य सभी को राजा दुर्योधन ने सब भाँति तृप्त कर दिया। इसी से यह नरलोक स्वर्गलोक सा दीख रहा है।

तीसरा—यज्ञ में आहुत ईंधन और शाकल्य के समाप्त हो जाने पर अग्नि इस प्रकार शान्त हो गई है जैसे सत्पुरुष का क्रोध।

पहिला—अरे, यह तो श्रीमान कुरुराज दुर्योधन सब राजमण्डली सहित इधर को ही आ रहे हैं।

दूसरा—सचमुच, इसके आगे २ महाभाग भीष्म द्रोण हैं।

तीसरा—आओ फिर, हम आगे बढ़ कर कुरुराज का अभ्यर्थना करें।

सब—(आगे बढ़कर) कुरुराज की जय हो।

(भीष्म और द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—धर्म का आश्रय लेकर दुर्योधन ने मुझे ही सम्मानित किया, क्योंकि परिजन और मित्रों की अपेक्षा गुरू ही शिष्य के दोष और गुणों का उत्तरदाता है।

भीष्म—ठीक है। द्यूत और कलह प्रिय होने से दुर्योधन का जो अयश हो रहा था, वह सब उसके इस सुकृत से नष्ट हो गया।

(दुर्योधन कर्ण, और शकुनी के साथ आता है)

दुर्योधन—(श्रद्धा से) मैं कृतकृत्य हुआ। गुरूजन सन्तुष्ट हैं, प्रजा विश्वास करती है। गुणों का प्रकाश हुआ और अयश नष्ट हो गया। मर कर स्वर्ग मिलता है, ऐसा जो लोग कहते हैं, वे असत्य हैं। मुझ मानुष देहधारी को इस लोक में ही स्वर्ग सुख प्राप्त हो गया।

कर्ण—कुरूराज—न्याय से उपार्जित धन जो आपने सत्कर्म में निश्शेष किया, वह उचित ही किया। क्षत्रियों की समृद्धि तो उसके बाण हैं। इस लिये वे अपना धन ब्राह्मणों को देकर पुत्र को केवल धनुष देता है।

शकुनी—खूब कहा अङ्गराज।

कर्ण—क्यों नहीं, यह तो क्षत्रियों की मर्यादा है। राम, मान्धाता, अम्बरीप, आदि पूर्व पुरुष यज्ञ धर्म करके ही नष्ट शरीर होने पर भी जीवित हैं।

सर्व—महाराज, कुरूपति दुर्योधन, आपका राज्य बढ़े, श्री बढ़े, जय हो।

दुर्योधन—अनुगृहीत हुआ, आचार्य। आपको अभिवादन करता हूँ।

द्रोण—किन्तु पुत्र, यह ठीक नहीं है।

दुर्योधन—किस लिये आचार्य?

द्रोण—(भीष्म की ओर संकेत करके) पहिले इन देव पुरुष को अभिवादन करो, राजन्।

भीष्म—नहिं, नहिं आचार्य, अनेक कारणों से आप मुझ से श्रेष्ठ हैं। मैं माता से उत्पन्न हूँ, आप अयोतिज हैं। मैं शस्त्र-जीवी हूँ। आप राग द्वेष रहित हैं। आप ब्राह्मण हैं, मैं क्षत्रिय हूँ। आप गुरु हैं, हम सब शिष्य हैं।

द्रोण—समझ गया, महात्मा पुरुष अपनी श्लाघा नहीं करते। आओ पुत्र, मुझे अभिवादन करो।

दुर्योधन—आचार्य, अभिवादन करता हूँ।

द्रोण—पुत्र सदैव इसी प्रकार यज्ञ दीक्षा स्नान करते रहो।

दुर्योधन—अनुगृहीत हुआ। पितामह अभिवादन करता हूँ।

भीष्म—पुत्र, इसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि शुद्ध रहे।

दुर्योधन—अनुगृहीत हुआ। मामा, अभिवादन करता हूँ।

शकुनी—वत्स, इसी प्रकार जरासन्ध जैसे राजाओं को जय करके राजसूय यज्ञ करो।

द्रोण—अरे, आशीर्वाद में भी यह वैर प्रिय गान्धार कुमार युद्ध संकेत करता है।

दुर्योधन—मित्र कर्ण, अब आओ, तुम्हें प्रेमालिंगन करूं।

कर्ण—कुरुराज, व्रत और उपवास से कृश आपके शरीर को मैं गाढ़ालिंगन से पीड़ित नहीं किया चाहता। मैं आपके प्रति श्रद्धा प्रकट करता हूँ।

दुर्योधन—सदैव तुम ऐसा ही करो।

द्रोण—पुत्र, यह देवराज इन्द्र का मित्र भीष्मक तुम्हारा अभिनन्दन करता है।

दुर्योधन—स्वागत आर्य, अभिवादन करता हूँ।

भीष्म—पौत्र दुर्योधन, यह दक्षिणापथ का निरोधक भूरि-श्रवा तुम्हारा अभिनन्दन करता है।

दुर्योधन—स्वागत आर्य।

द्रोण—पुत्र दुर्योधन श्री कृष्ण का भेजा हुआ यह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु तुम्हारा अभिवादन करता है।

शकुनी—वत्स दुर्योधन, यह जरासन्ध का पुत्र सहदेव तुम्हारा अभिवादन करता है।

दुर्योधन—आओ प्रिय, पिता के समान ही पराक्रमी बनो।

सब—यह समस्त राजमण्डल तुम्हारा अभिनन्दन करता है।

दुर्योधन—अनुगृहीत हुआ। हाँ, क्या कारण है कि सब राजा लोग तो आ रहे हैं परन्तु महाराज विराट नहीं आये।

शकुनी—मैंने दूत भेजा था, मार्ग में ही होगा।

दुर्योधन—आचार्य, धर्म और धनुष के गुरु गुरु-दक्षिणा लीजिये।

द्रोण—हुआ, फिर कभी ले लूंगा।

दुर्योधन—यह क्यों, आचार्य?

भीष्म—सोमपायी क्षमाचार्य, जब कुरु छत्रच्छाया सेवन करते हैं, तब उन्हें किस वस्तु की कमी है।

दुर्योधन—आज्ञा दीजिये, आपकी क्या इच्छा है। मैं क्या दूँ?

द्रोण—पुत्र दुर्योधन, क्या कहूँ?

दुर्योधन—आचार्य, आपकी ही कृपा से मेरी शूरों में गणना है। मैं आप ही के बल पर साहसी हूँ। आप स्वच्छन्द होकर कहिये आप क्या चाहते हैं? मेरे हाथ की यह गदा ही मेरी है, बाकी सब कुछ आपका है।

द्रोण—पुत्र कहना तो चाहता हूँ, पर कहा नहीं जाता।

सब—अरे, आचार्य के नेत्रों में जल आ गया।

भीष्म—पौत्र, तेरा सब पुण्य नष्ट हुआ।

दुर्योधन—कोई है ?

(भट आता है)

भट—महाराज की जय हो।

दुर्योधन—जल लाओ।

भट—जो आज्ञा। (जाकर जल लाता है) महाराज की जय हो। जल उपस्थित है।

दुर्योधन—मुझे दो (कलश लेकर) आचार्य आँसुओं से भरे मुख को धो डालिये।

द्रोण—कष्ट मत करो पुत्र, मेरे हृदय का दुख दूर होने ही से आँसू धुलेंगे।

दुर्योधन—आप यदि मेरी पूर्व कुटिलता का विचार करते हैं और आप यह समझते हैं कि मैं समर्थ होने पर भी आपको देय न दूँगा तो अपना हाथ फैलाइये, मैं यह दान जल विसर्जन करता हूँ।

द्रोण—बस करो पुत्र, मैं आश्वस्त हुआ। जिन पाण्डवों का बारह वर्ष से कुछ पता नहीं है, तुम अब उनका राज्य भाग देदो। यही मेरी दक्षिणा अथवा भिक्षा है।

शकुनी—(क्रोध से) कदापि नहीं, यह धर्म वंचना है।

द्रोण—धर्म वंचना कैसी ? भाइयों का पैतृक राज्य देना वंचना है। याचना करने पर देना अच्छा है या बलात्कार से छिन जाना।

सब—बलात्कार कैसा ?

भीष्म—पौत्र दुर्योधन, यह यज्ञान्त का अवभृथ स्नान काल है, द्यूत नहीं है। तुम इस समय शकुनी की मीठी किन्तु अहितकारी बात मत सुनो। यह जो द्रुपद राज नन्दिनी सहित पाण्डव धूल धूसरित बन २ घूमते हैं; तुम उसके और वे तुम्हारे विमुख हैं। यह सब महा अनर्थ का मूल है।

दुर्योधन—किन्तु आचार्य, एक बात कहूँ।

द्रोण—पुत्र, कहो।

दुर्योधन—जब पाण्डव जुए में सर्वस्व हार कर राज्य और सम्मान से भ्रष्ट हुए थे तब बलात्कार में समर्थ वे किस लिये चुप बैठे रहे थे ?

द्रोण—यह बात तो हताश्रय वृत्ति युधिष्ठिर से पूछो। जिसने सभा के खम्भे उखाड़ने से भीम को रोक लिया था। उस समय यदि एकाध का निपतन हो जाता तो आज शकुनी का आक्षेप नहीं सहन करना पड़ता।

भीष्म—अरे क्या होना चाहिए और क्या हो रहा है। आचार्य, कलह से क्या लाभ ? असल बात करनी उचित है।

द्रोण—कलह ही से ही मेरी याचना तो कुत्सित है ही।

भीष्म—आचार्य प्रसन्न हों। देखो पौत्र, वे पाण्डव,दुर्बल दीन बल और हीनाश्रय हैं। वे तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकते। तुम कुल में बड़े हो। वे तुम्हारे प्यारे, कुटुम्बी हैं। कहो, तुम उनका भरण करोगे या जीवन भर वे मृगों के साथ बन में भटकते फिरें।

शकुनी— भटकते फिरें।

कर्ण—आचार्य, क्रोध मत कीजिये। कड़वी बात हितकारी भी अच्छी नहीं लगती। श्रेष्ठ पुरुष खुशामद पसन्द नहीं करते। इन बातों को बन्द कीजिए। और शिष्य का हित कीजिए। हाथी को नर्मी से ही वश में किया जाता है।

द्रोण—वत्स कर्ण, शकुनी की बात से मुझे क्रोध आ गया था। तुम ठीक कहते हो। पुत्र दुर्योधन मैं तुम्हारे आधीन हूं।

भीष्म—धन्य है आचार्य।

दुर्योधन—आप मेरे ही नहीं, मेरे कुल के भी स्वामी हैं।

द्रोण—यह तुम्हारे कहने योग्य ही वचन तुमने कहे।

तो पुत्र, मैंने जो तुम्हें द्विविधा में डाल दिया यह मेरा ही दोष है। परन्तु मैं तुम्हारे ही लाभ के लिये तुम्हें कष्ट देता हूँ। महा कुलों के परम्परागत जो भेद होते हैं, उनका शमन धर्माधिकार ही से होता है।

दुर्योधन मैं मन्त्रणा किया चाहता हूँ।

द्रोण--किससे, भीष्म से, कर्ण से, कृप से या सिन्धुपति जयद्रथ से ?

दुर्योधन--नहीं मामा से।

द्रोण--क्या शकुनी से ? तब तो हो चुका।

दुर्योधन--मामा, इधर आइये, मित्र कर्ण तुम भी।

(तीनों एकान्त में मन्त्रणा करते हैं)

द्रोण--(स्वगत) मुझे भी युक्ति से काम लेना है। (प्रकट) वत्स गान्धार राज, इधर आओ।

शकुनी--उपस्थित हूँ।

द्रोण--वत्स, बूढ़े आदमी शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाते हैं। मेरी बातों का विचार न करो, वत्स।

भीष्म--हाय, शिष्यों के प्रेम के कारण आचार्य शकुनी की खुशामद कर रहे हैं।

शकुनी--(स्वगत) वाह रे धूर्त्त ब्राह्मण, मुझी को उल्लू बनाना चाहता है। (एकान्त में दुर्योधन से मन्त्रणा करता है)

दुर्योधन--कहिये मामा, क्या किया जाय।

शकुनी--कदापि नहीं देना चाहिए।

दुर्योधन--मामा, देना ही चाहिये।

शकुनी--देते ही हो तो फिर सलाह कैसी ?

दुर्योधन--मित्र अङ्गराज, तुम्हारी क्या राय है ?

कर्ण--भाईचारे के मामले में मैं क्या कहूँ ? देना न देना आपका काम है। मैं तो युद्ध में आपके साथ हूँ।

दुर्योधन—मामा, पाण्डवों को ऐसा कुदेश दो जिसकी सीमा पर बलवान शत्रु रहते हों, ऊसर भूमि हो, नगर जनपद न हों। वहीं पाण्डव बसें।

शकुनी—वाह, अर्जुन से अधिक बलवान पृथ्वी पर कौन है। और जहाँ युधिष्ठिर है, वहां ऊसर भी शस्य सम्पन्न हो जायगी।

दुर्योधन—मैंने गुरू के करतल पर दान जल दिया है तो देना तो पड़ेगा ही। छल से या अनीति से जैसे बने मामा, राजा के जलदान की मर्यादा रखो।

शकुनी—तो तुम केवल वचन पालन करना ही, चाहते हो जिससे झूठे न बनो।

दुर्योधन—यही, केवल यही।

शकुनी—अच्छी बात है (अलग हट कर) आचार्य, कुरुराज ने निर्णय कर लिया।

द्रोण—कहो वत्स।

शकुनी—आज से पांच दिन के भीतर आप पाण्डवों का पता लगा कर उन्हें ले आइये। उन्हें उनका आधा राज्य दे दिया जायगा।

द्रोण—यह कैसे वत्स, बारह वर्ष से जिन पाण्डवों का कोई पता समाचार ही नहीं है, उन्हें मैं पाँच दिन के भीतर कहाँ से ढूँढ़ लाऊँगा। जो कार्य करना है, उसमें छल मत करो।

भीष्म—पौत्र दुर्योधन, छल नहीं, मेरी भी सम्मति है। कुरुओं का वचन सदा सत्य होता है। वर्ष में, चाहे सौ वर्ष में जब भी पाण्डव आवें, उनका आधा राज्य दे दो।

दुर्योधन—बस, मैं निर्णय कर चुका।

द्रोण—शोक, मैं हनुमान होता और समुद्र लांघ सकता। मैं कहाँ से पाँच दिन में पाण्डवों को ला सकता हूँ।

(भट आता है)

भट—महाराज की जय हो, विराटनगर से दूत उपस्थित है।

सब—यहां बुलाओ।

भट—जो आज्ञा। (जाता है)

(दूत आता है)

दूत—महाराज की जय हो।

सब—क्या विराटेश्वर आए हैं?

दूत—शोक के कारण नहीं आ सके।

सब—कैसा शोक?

दूत—उनके सम्बन्धी सौ कीचकों का किसी ने रात में गुप्त रूप से बिना ही शस्त्र के बध कर डाला है।

सब—अरे, बिना ही शस्त्र के?

भीष्म—बिना ही शस्त्र के? (विचार कर) आचार्य, पांच दिन की शर्त्त स्वीकार कर लो।

द्रोण—(निकट आकर) क्यों?

भीष्म—(धीरे से) यह निश्चय भीमसेन का कार्य है। इन सौ कौरवों का क्रोध सौ कीचकों पर पड़ा।

द्रोण—आप कैसे कह सकते हैं?

भीष्म—आचार्य, बछड़े के सींग कहाँ होते हैं, यह बैल जानता है।

द्रोण—समझ गया (पुकार कर) पुत्र दुर्योधन, यही सही।

दुर्योधन—तो पांच दिन में।

द्रोण—सुनो, सुनो, यज्ञ में उपस्थित विद्वानों और राजागण, आपके समक्ष कुरूपति दुर्योधन और उनके मामा शकुनी

प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से पांच दिन के भीतर यदि पाण्डवों का पता लग जायगा तो वे उन्हें आधा राज्य बांट देंगे। अब पुत्र ?

दुर्योधन—अब क्या ?

द्रोण—भली भाँति विचार लो।

शकुनी—पांच दिन बीतने दीजिए।

भीष्म—अरे, आचार्य के हर्षोल्लास के कारण कहीं दुर्योधन को शंका न हो जाय (प्रकट) पौत्र दुर्योधन, विराट से हमारी पुरानी शत्रुता है। इसी से वह बुलाने पर भी यज्ञ में नहीं आये हैं। उनकी गौएं हरण करना चाहिये।

द्रोण—नहिं गाङ्गेय, विराटेश्वर मेरा प्रिय शिष्य है। ऐसा मत कीजिये।

भीष्म—(धीरे से) आप चुप रहिये। इसी कूटनीति से पाण्डव प्रकट होंगे।

(भट आता है)

भट—महाराज की जय हो, नगर में प्रविष्ट होने के लिये रथ प्रस्तुत है।

दुर्योधन—तो इन्हीं रथों से तुरन्त विराट की गौओं को हरण करना चाहिये।

द्रोण—मेरा रथ लाओ।

शकुनी—मेरा हाथी।

कर्ण—मेरा रथ।

भीष्म—मेरा धनुष।

द्रोण—पुत्र दुर्योधन, हम युद्ध में तुम्हारा पराक्रम देखा चाहते हैं।

दुर्योधन—अच्छी बात है आचार्य।

द्रोण—प्रिय गान्धारराज, इस अभियान के नेता तुम्हीं

रहे। अपना हाथी आगे बढ़ाओ।

शकुनी—बहुत अच्छा आचार्य, । (सब जाते हैं)

दृश्य दूसरा

स्थान—विराट राजा की नगरी। राज महालय के बाहरी प्राङ्गण का एक भाग। बहुत सी गाएं सजधज कर खड़ी हैं। वृद्ध ग्वाल का प्रवेश। सफेद मूछें, हाथ में लम्बी यष्टिका। **समय**—प्रात: काल)

(ग्वाला आनन्द मग्न होकर गाता है)

ग्वाला—आज आनन्द का दिन है, महाराज विराट का आज जन्म नक्षत्र है। हाट बाट वीथिकाएं सजाई गई हैं। विराट नगरी दुलहिन की भाँति सज रही है। यह दस सहस्र गाएं महाराज की आज्ञा से स्वर्ण भूषिता करा कर ब्राह्मणों को दान देने के लिये मंगाई गईं हैं। आनन्द ही आनन्द है. महाराज बिराट की जय हो। (घूमकर) अरे गोमित्रक, गोमित्रक !!

(गोमित्रक आता है)

गोमित्रक—मामा जी, क्या आज्ञा है।

ग्वाला—अरे मूर्ख, आज्ञा पूँछता है। नहीं जानता आज महाराज का जन्म नक्षत्र है ! ये दस सहस्र गौ स्वर्णालंकृता आज ब्राह्मणों को दान दी जावेंगी। सब गोप बालक बालिकाओं को नये वस्त्र मिलेंगे। सब को बुला। सब नाचे गावें, आनन्द करें।

गोमित्रक—बहुत अच्छा मामा जी। (जाता है)

(सब ग्वाल बाल आकर नाचते गाते हैं)

ग्वाला—भांति २ के रङ्गीन वस्त्र पहने हुए ये ग्वाल बाल नाच गान में मस्त कैसे भले प्रतीत होते हैं। जी चाहता है कि मैं भी इन के साथ नाचूँ (देखकर) अरे यह कौवा ?

(गोमित्रक आता है)

गोमित्रक—कौन सा कौवा मामा जी ?

ग्वाला—देख नहीं रहा वह कौवा सूखे वृक्ष के ठूँठ पर बैठ कर डाली के साथ चोंच रगड़ २ कर सूर्य की ओर मुँह करके कैसा भीषण शब्द कर रहा है।

गोमित्रक—(देखकर) अरे मामा जी, उधर बड़ी धूल उड़ रही है।

ग्वाला—धूल ही नहीं, शंख और नगारों का भी शब्द हो रहा है।

सब ग्वाल बाल—मामा जी, ये तो कोई चोर प्रतीत होते हैं, जो घोड़ों, रथों और हाथियों पर सफेद छत्र लगाये शस्त्र चमकाते हुए ग्वालों की बस्ती में धंसे ही चले आते हैं।

ग्वाला—अरे, बाण छूटने लगे। भागो, झटपट घरों में भाग जाओ। (सब भाग जाते हैं) (ग्वाला दोनों हाथ ऊंचे करके) ठहरो, ठहरो, मारो, पकड़ो। मैं अभी महाराज को सूचित करता हूँ।

(द्रुतगति से जाता है)

दृश्य तीसरा

(विराट का राजमहालय—सभाभवन का प्राङ्गण)

(भट का प्रवेश)

भट—सूचित कर दो, सूचित कर दो, महाराज विराट

श्वर को विदित हो कि चोरों के समान पराक्रम करके कौरव हमारी गायें हरण करके ले जा रहे हैं। वह देखो-बछड़े रस्से तुड़ा कर भाग रहे हैं। गायें व्यथा से सींग हिला हिला कर चिल्ला रही हैं, गोकुल में हाहाकार हो रहा है।

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—क्या कहा, कौरव ?

भट—हाँ, आर्य।

कंचुकी—तो भाइयों से द्रोह करने वालों के लिए यह उचित ही है। परन्तु महाराज विराटेश्वर तो जन्म नक्षत्र सम्बन्धी अनुष्ठान में लगे हैं। इस लिये बिना अवसर सूचना देने से वे क्रुद्ध होंगे। पुण्य दिन के काम की समाप्ति पर ही मैं निवेदन करूंगा।

भट—आर्य, यह आपत्ति काल है, विलम्ब का अवसर नहीं है, जल्द ही सूचित कर दीजिये।

कंचुकी—यदि ऐसा है तो अभी निवेदन करता हूँ।

(विराटेश्वर का प्रवेश)

राजा—यह सब क्या हो रहा है, कैसा कोलाहल है। मेरा धेनुकुल भयभीत होकर भाग रहा है। जयसेन, जयसेन।

(जयसेन का प्रवेश)

जयसेन—महाराज, अनर्थ हो गया। कौरव हमारा धेनुकुल हरण कर ले गये !

राजा—हरण कर ले गये। तुमने रोका नहीं ?

जयसेन—नहीं रोक सके, उन का वेग दुस्तर था।

राजा—तो मुझे महाराज मत कहो, मेरा क्षत्रियत्व दूषित हो गया। परन्तु मेरा रथ लाओ, मेरे शस्त्र लाओ। मैं दुर्धर्ष कौरव चोरों को देखूं तो उन में कितना शौर्य है।

(कङ्क का प्रवेश)

कङ्क—(आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, यह युद्ध साज किस लिये सजाये जा रहे हैं।

राजा—हमारा धेनुकुल हरण किया है।

कङ्क—किसने ?

राजा—धार्तराष्ट्रों ने।

कङ्क—(मन ही मन) यह तो हमारे ही कुल का अपराध है।

राजा—आप क्या सोचने लगे।

कङ्क—कुछ नहीं। सुन कर दुखी हुआ।

राजा—(रुष्ट होकर) परन्तु धार्तराष्ट्रों को युधिष्ठिर ही सह सकते हैं, मैं नहीं।

कङ्क—(स्वगत) अहा, मेरी सहिष्णुता की लोग चर्चा करते हैं। मेरा वन २ भटकना, द्रौपदी का भूमिशयन सब सफल हो गया।

(भट का प्रवेश)

राजा—शत्रु के समाचार कह।

भट—महाराज, शत्रु अकेला नहीं है। उसके साथ पृथ्वी के सब राजा हैं। महाप्राण भीष्म हैं, अतिरथ जयद्रथ, महारथी कर्ण और दुर्धर्ष द्रोण भी हैं। शकुनी और कृप भी हैं। उनकी फहराती हुई ध्वजा देखकर ही हमारे वीर मूर्छित हो गये हैं।

राजा—अच्छा, गांगेय भी हैं? (उठकर) कौन उपस्थित है ?

भट—महाराज की जय हो।

राजा—सूत को बुलाओ और रथ तैयार करो मेरे पूज्य अतिथि भीष्म आये हैं, उन्हें मैं आज बाणों से तृप्त करूंगा।

(सूत आते हैं)

सूत—महाराज का रथ कुमार ले गये हैं।

राजा—क्या कुमार ?

कङ्क—महाराज, कुमार को रोकिये। रणाग्नि विवेक नहीं रखती। तथा धार्तराष्ट्र किसी की उपेक्षा नहीं करते।

राजा—तो दूसरा रथ लाओ। परन्तु ठहरो। कुमार का सारथी कौन है ?

सूत—वृहन्नला महाराज।

राजा—वृहन्नला क्यों ? आप क्यों नहीं ?

सूत—महाराज प्रसन्न हों, मैं रथ लाया था। परन्तु कुमार ने मुझे रोक कर वृहन्नला को ही साथ लिया।

कङ्क—यदि वृहन्नला सारथी है तब तो चिन्ता की बात नहीं। बिना ही बाण चलाये केवल रथ घोष से ही शत्रु पराजित हो जायंगे।

(भट आता है)

भट—महाराज, कुमार का रथ भग्न हो गया।

राजा—कैसे ?

कङ्क—कहाँ ?

भट—महाराज, शत्रुओं के अनगिनत वीरों ने रथ का मार्ग रोक लिया—इससे कुमार रथ श्मशान की ओर दौड़ा ले गये।

कङ्क—(स्वगत) ठीक है गाण्डीव वहीं रक्खा है। (प्रकट) इसका कुछ कारण होगा। महाराज चिन्ता न करें, जहाँ धार्त्तराष्ट्र हैं वहीं श्मशान होगा।

राजा—ब्राह्मण, यह विनोद का काल नहीं। (भट से) जाओ, और समाचार प्राप्त करो।

भट—जो आज्ञा (जाता है)

राजा—अरे, यह उमड़ती हुई नदी की वेगवती धारा

के समान पृथ्वी को कम्पित करने वाला कैसा शब्द सुनाई दे रहा है?

(भट आता है)

भट—महाराज, क्षण भर श्मशान भूमि में रुक कर कुमार ने अपने शत शत बाणों से काले हाथियों को लोहू से लाल बना दिया। योद्धा और अश्व कोई भी अछूता नहीं बचा। महारथियों के रथ बाणों से छिप गये और अब भी कुमार के धनुष से बाणों की वेगवती धारा बह रही है।

कङ्क—(स्वगत) यह सब गाण्डीव का चमत्कार है।

राजा—और कहो।

भट—मैं तो देख नहीं पाया। परन्तु देखने वाले कहते हैं, कि उत्तर के रथ का धनुर्घोष सुनकर वीरों ने धनुष रख दिये। भीष्म चुप बैठ गये। सब के छत्र बाणों से भंग हो गए। केवल अभिमन्यु अकेला युद्ध कर रहा है।

कङ्क—(घबरा कर) यदि अभिमन्यु युद्ध कर रहा है तो दूसरा सारथी भेजिये।

राजा—किस लिए? भीष्म द्रोण और कर्ण जैसे दिव्यास्त्र-धारी अतिथियों को विमुख करके कुमार क्या अभिमन्यु को घर्षण नहीं कर सकता? या आप समझते हैं कुमार अभि-मन्यु के पिता अर्जुन से डर जायगा?

भट—किन्तु महाराज, ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कुमार अभिमन्यु से डटकर युद्ध करना हीं नहीं चाहते, न उसे मारना ही चाहते हैं, क्योंकि कुमार का रथ द्रुतगति से युद्ध-क्षेत्र के चारों ओर चक्कर लगा रहा है, बृहन्नला का सारथ्य अद्भुत है।

राजा—जाओ, और समाचार प्राप्त करो।

भट—जो आज्ञा। (जाता है)

(दूसरा भट आता है)

भट—महाराज की जय हो। त्रिगर्तराष्ट्र पराजित हुए, गाएं छीन लीं गईं।

कङ्क—अभिनन्दन महाराज।

राजा—कुमार अब कहाँ है?

भट—महाराज, वे अपने योद्धाओं के शौर्यवृत्त लिख रहे हैं।

राजा—वाह, यह बहुत अच्छी बात है। बृहन्नला कहाँ है?

भट—प्रिय निवेदन के लिये उपस्थित है।

राजा—तो उपस्थित कर।

भट—जो आज्ञा (जाता है)

(बृहन्नला आती है)

बृहन्नला—(स्वगत) ओह, स्त्री भाव धारण करने के कारण मैं क्षण भर के लिये गाण्डीव संचालन ही भूल गया। पहिले तो स्त्री वेश में रह कर धनुष उठाने में मुझे लज्जा हुई। परन्तु ज्यों ही शत्रुओं के बाण बरसने लगे, मेरी लज्जा भी उड़ गई। परन्तु शत्रुओं को मार कर और गायों को छीन कर भी मुझे आनन्द नहीं हुआ। पापात्मा दुःशासन को बाँध कर जो मैं न ला सका इसी से। परन्तु उत्तरा ने जो प्रसन्न होकर मुझे अलंकार पुरस्कार में दिये हैं? यह कैसी लज्जा की बात है। जो हो अब चलूं, विराटेश्वर को विजय की बधाई दूं। (आगे बढ़कर) अच्छा, यहाँ आर्य युधिष्ठिर भी हैं। शौर्य और तेज से परिपूर्ण, ब्राह्मण वृत्ति धारण करने से साक्षात ब्रह्मर्षि से दीख रहे हैं। (आगे बढ़ कर) भगवन् अभिवादन करती हूँ।

कङ्क—चिरभिलाष पूर्ण हो। रूप और गुण से क्या? कर्म ही से मनुष्य की शोभा है। इसी बृहन्नला को देखो इसने कैसा

सम्मान योग्य कार्य किया है (बृहन्नला से) बृहन्नला, तुम थकित हो फिर भी महाराज तुम्हारे मुँह से युद्ध समाचार विस्तार से सुना चाहते हैं।

बृहन्नला—सुनिए महाराज।

(भट आता है)

राजा—क्या बात है, जो इतने प्रहर्षित हो।

भट—अघट घटना हुई महाराज, सौभद्र अभिमन्यु पकड़े गये।

बृहन्नला—अरे कैसे ?

कङ्क—बृहन्नला, यह क्या ?

बृहन्नला—भगवन, कदाचित अपने पिता के भाग्यदोष से ही।

राजा—पकड़े गये ?

भट—महाराज, निश्शंक रथ पर चढ़ कर भुजाओं में उठा लिया।

राजा—किसने ?

भट—जिसे महाराज ने रसोई की सेवा में रख छोड़ा है।

बृहन्नला—(स्वगत) अहा, आर्य भीमसेन ने पुत्र को अङ्क भर आलिङ्गन किया। मैं तो देखने भर से ही संतुष्ट हो गया था।

राजा—कुमार अभिमन्यु को आदरपूर्वक ले आओ।

कङ्क—महाराज, लोग कहेंगे कि कृष्ण और पाण्डवों से डरकर ही आप कुमार का आदर कर रहे हैं इसलिए अनादर ही ठीक है।

राजा—वह अर्जुन का पुत्र है। फिर मेरे पुत्र का समवयस्क है। द्रुपद के सम्बन्ध से मेरा नाती है। फिर मैं कन्या का पिता हूँ पाण्डव हमारे हैं।

कङ्क—फिर जैसी महाराज की इच्छा।

राजा—कुमार को कौन यहाँ लावेगा ?

कङ्क—वृहन्नला महाराज।

राजा—वृहन्नला, कुमार को यहाँ लाओ।

वृहन्नला—जो आज्ञा महाराज। (जाती है)

कङ्क—(स्वगत) यह मैंने अच्छा किया। कहीं राजा के सामने ही पुत्र को आलिङ्गन करके अर्जुन भेद खोल देता तो बड़ी खरावी होती।

राजा—उत्तर ने अभूतपूर्ण कार्य किया। भीष्मादि महारथियों को भग्न करके सौभद्र को बन्दी किया। मानो उसने पृथ्वी जय कर ली।

दृश्य चौथा

(विराट महालय का बाहरी कक्ष, अभिमन्यु खड़े है)

(भीमसेन आते है)

भीमसेन—लाक्षागृह दाह के समय मैं माता और सब भाइयों को भुजाओं में भर कर योजन पर्यन्त ले गया था, फिर भी थका नहीं। परन्तु पुत्र को रथ से उतारने में मेरा देह टूट गया।

अभिमन्यु—अरे, यह कौन है। विशालकाय लोहदण्ड पुरुष। जिन्होंने अपनी सबल भुजाओं में मुझे अनायास ही उठा लिया। महाबली होने पर भी पीड़ित नहीं किया।

(वृहन्नला आती है)

बृहन्नला—(भीमसेन से) आर्य, यह क्या किया ? पुत्र को प्रथम युद्ध में ही पराजित होने का दोष लगा दिया ? सुभद्रा को पुत्र की कितनी चिन्ता होगी। तथा वासुदेव भी कितने रुष्ट होंगे।

भीमसेन—(हँस कर) परन्तु द्रौपदी पुत्र को देखना चाहती थी इसीलिये।

बृहन्नला—तो अब उससे कुछ बात कीजिये।

भीमसेन—अच्छा (आगे बढ़कर) अभिमन्यु।

अभिमन्यु—क्या कहा ? अभिमन्यु ? केवल नाम।

भीमसेन—अरे, रुष्ट हो गया, अर्जुन, तुम्हीं बात करो।

बृहन्नला—अभिमन्यु।

अभिमन्यु—एं अभिमन्यु। हाँ, अभिमन्यु मेरा ही नाम है। परन्तु क्या विराट देश में नीच लोग क्षत्रिय पुत्रों को नाम से पुकारते हैं। यही यहाँ की सभ्यता है ?

बृहन्नला—अभिमन्यु, तुम्हारी माता प्रसन्न तो हैं।

अभिमन्यु— क्या कहा माता ? क्या आप लोग धर्मराज, भीमसेन अथवा धनञ्जय हैं जो इस प्रकार मेरी अवहेलना करके गुरूजनों की भाँति पारिवारिक कुशल पूछते हैं।

बृहन्नला—अभिमन्यु, देवकी पुत्र कृष्ण तो प्रसन्न हैं।

अभिमन्यु—अच्छा, पूज्यार्हों को भी नाम से ? छी, छी, अच्छा, हाँ, सम्बन्धी सब कुशल से हैं।

(दोनों एक दूसरे को देखते हैं)

अभिमन्यु—किस लिये आप लोग मेरा अपमान कर रहे हैं ?

बृहन्नला—तुम तरुण वीर पुत्र होने पर भी पराजित हुए, इसी लिये।

अभिमन्यु—बहुत हुआ। आत्म श्लाघा मेरे कुल की मर्यादा

नहीं। मेरे बाणों से मरे हुए शूरों को जाकर युद्ध स्थल में देखो।

बृहन्नला—(स्वगत) यह तो ठीक है। घोड़ा, हाथी, रथ, रथी कोई भी कुमार के हाथों विद्ध होने से नहीं बचा। मैं भी यदि रथ न घुमाता तो मेरा बचना भी शक्य न था। (प्रकट) ऐसा ही है तो कैसे एक आदमी ने तुम्हें पकड़ लिया?

अभिमन्यु—वह अशस्त्र था। मैं अर्जुन पुत्र अभिमन्यु अशस्त्र को नहीं मारता।

भीमसेन—धन्य अर्जुन, तुमने अपनी और पुत्र की श्लाघा सुन ली।

बृहन्नला—तो इधर से कुमार, महाराज तुम्हें देखा चाहते हैं।

अभिमन्यु—कौन महाराज?

बृहन्नला—भीतर आओ तब देखो।

अभिमन्यु—ऐसा ही सही।

(जाते हैं)

दृश्य पांचवा

(भीतरी कक्ष। विराटेश्वर कङ्क बृहन्नला आदि हैं)

अभिमन्यु—(भीतर आकर) कौन महाराज?

बृहन्नला—(धीरे से) वह ब्राह्मण।

अभिमन्यु—ब्राह्मण? भगवन्, आर्य, अभिवादन करता हूँ।

कङ्क—आओ पुत्र, पिता के समान धीर वीर बनो!

अभिमन्यु—अनुगृहीत हुआ।

राजा—(स्वगत) अरे, क्या यह मुझे अभिवादन नहीं करेगा? तब तो इसका दर्प दमन करना होगा। (प्रकट) इसे किसने पकड़ा?

भीमसेन—मैंने महाराज।

अभिमन्यु—निश्शस्त्र होकर!

भीमसेन—तो इस से क्या? मैं अपने भुजबल से निश्शस्त्र ही शत्रु दलन करता हूँ। शस्त्र तो दुर्बल जन ग्रहण करते हैं।

अभिमन्यु—अरे, आप तो मध्यम तात के समान बोल रहे हैं, जिनकी भुजा में एक अक्षौहिणी सेना का बल है।

कङ्क—यह मध्यम तात कौन हैं पुत्र?

अभिमन्यु—मैं ब्राह्मण से वाद विवाद नहीं कर सकता कोई दूसरा पूछे।

राजा—ऐसा ही है तो मैं पूछता हूँ।

अभिमन्यु—तो सुनिये। वह प्रतापी तृतीय पाण्डव हैं जिनका नाम लोक विख्यात है।

राजा—पुत्र, तुम्हारे रोष से मुझे विनोद होता है। अब कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं?

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—झूठी प्रशंसा भी कष्ट का कारण है।

राजा—यह क्या बात है पुत्र?

उत्तर—आप जो मुझे युद्धजयी मान रहे हैं इससे मैं लज्जित हो रहा हूँ।

राजा—पुत्र, जिन वीरों ने युद्ध में शौर्य प्रकट किया उनका सत्कार........

उत्तर—कीजिये।

राजा—कौन हैं?

उत्तर—धनञ्जय।

राजा—धनञ्जय ?

उत्तर—जी हाँ, उन्होंने अपने अमोघ बाणों से भीष्म, द्रोण आदि योद्धाओं को परास्त करके हम सब को बचा लिया।

राजा—ऐसा हुआ ?

वृहन्नला—महाराज प्रसन्न हों। यह कुमार का बालभाव है सब कुछ स्वयं करके औरों को यश देते हैं।

उत्तर—छिपाने से क्या लाभ है, श्रीमान के प्रकोष्ठ में गाण्डीव की ज्या का चिन्ह है। आपने बारह वर्ष से धनुष धारण नहीं किया, फिर भी अभी वह वैसा ही है।

वृहन्नला—यह तो हाथों में कड़े पहनने से चिन्ह हो गया है। ठीक हो जायगा।

राजा—अच्छा, अभी पता लग जायगा।

वृहन्नला—यदि मैं ही अर्जुन हूँ तो ये आर्य युधिष्ठिर और भीमसेन हैं।

राजा—अरे, यह क्या बात है ? क्या धर्मराज, भीम और धनञ्जय मुझ पर विश्वास नहीं करते ? अस्तु समय पर देखा जायगा। वृहन्नला तुम भीतर जाओ।

वृहन्नला—जो आज्ञा महाराज।

कङ्क—अर्जुन ठहरो, हमारी प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी।

अर्जुन—जैसी आर्य की आज्ञा।

राजा—तब तो सत्यव्रती वीर पाण्डवों के निवास से मेरा कुल उज्ज्वल हुआ।

अभिमन्यु—अहा, तो आप मेरे पूज्य पितृदेव ही हैं। तात, अज्ञान से जो मैंने अब से प्रथम अभिवादन नहीं किया। वह अपराध क्षमा कीजिये।

भीमसेन—अरे पुत्र, पिता के समान ही पराक्रमी हो।

अभिमन्यु—अनुगृहीत हुआ।

अर्जुन—आओ पुत्र,। (आलिंगन करता है) आज तेरह वर्ष बाद मेरा कलेजा ठण्डा हुआ। पुत्र, विराटेश्वर को अभिवादन करो।

अभिमन्यु—अभिवादन करता हूँ।

राजा—पुत्र, तुम युधिष्ठिर का धैर्य, भीम का बल, और अर्जुन का नैपुण्य प्राप्त करो। (कुछ स्थिर होकर) कौन है?

(भट आता है)

भट—जय हो महाराज!

राजा—जल लाओ।

भट—जो आज्ञा।

(जल लाता है)

राजा—धनञ्जय, गोग्रहण विजय की शुल्क में उत्तरा को ग्रहण करो।

युधिष्ठिर—अनुचित है महाराज।

अर्जुन—महाराज, मैंने आपके अंतःपुर में सब स्त्रियों को मातृवत देखा है। अब आप यदि उत्तरा को देते ही हैं तो मैं अभिमन्यु के लिये ग्रहण करता हूँ।

युधिष्ठिर—यह उचित है।

राजा—आपकी निष्ठा का अभिनन्दन करता हूँ। आज उत्तम नक्षत्र है, आज ही विवाह हो।

युधिष्ठिर—ठीक है, आप पितामह की सेवा में कुमार उत्तर को भेजिये।

राजा—ऐसा ही होगा। आइये धर्मराज, भीम और धनञ्जय इस आनन्द अवसर पर महल में पधारिये।

(सब जाते हैं)

———

दृश्य छठा

स्थान—विराट नगरी। राजसभा स्थान। **समय**—प्रातःकाल।

(युधिष्ठिर, विराट, श्री कृष्ण बलराम, सात्यकि, द्रुपद और शेष पाण्डव गण)

युधिष्ठिर—दुर्योधन का उत्तर आप सुन चुके?

सात्यकि—वह सन्दिग्ध है।

द्रुपद—यदि कुरुराज दुर्योधन द्यूत के समय के नियम का उल्लंघन करते हैं तो यह अन्याय है।

बलराम—अन्याय कैसे?

विराट—अरे, यह घर में ही छिद्र है।

बलराम—छिद्र नहीं, मैं न्याय की बात कहता हूँ।

सात्यकि—श्री कृष्ण इस में प्रमाण हैं।

कृष्ण—मैं केवल एक निवेदन आर्य से कर सकता हूँ।

बलराम—तुम पाण्डवों के मित्र हो कृष्ण, फिर भी न्याय की बात कहो।

युधिष्ठिर—क्या आर्य, हमें नीतिहीन समझते हैं।

बलराम—तो राज्य के खण्ड २ मत करो।

भीम—क्या हम अपना आधा राज्य छोड़ दें?

बलराम—राज्य का न्यायपूर्वक बटवारा नहीं हो सकता।

द्रुपद—किन्तु वह तो प्रथम ही बंट चुका था।

बलराम—किसने बाँटा?

युधिष्ठिर—महाराज धृतराष्ट्र ने।

बलराम—उन्हें इसका अधिकार नहीं था। महाराज धृतराष्ट्र को राज्य बाँटने का स्वत्त्व नहीं था। राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी दुर्योधन है, और वह बाँटना नहीं चाहता

था। पीछे जब दुर्योधन ने उसे जुये में जीत लिया, तब भी उसे वापस करने का धृतराष्ट्र को अधिकार न था। इसके बाद दूसरी बार द्यूत में जो चौदहवें वर्ष में राज्य फेर देने का वचन दिया गया था, वह अनावश्यक था क्योंकि राज्य फेरने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

द्रुपद—किन्तु जब दुर्योधन ने, महाराज धृतराष्ट्र को राज्य फेर देने के वचन को प्रमाणित करके दुबारा द्यूत खेला था। उस समय वे राजा न थे। ऐसी दशा में यदि वे राज्य हार जाते तो धृतराष्ट्र का राज्य ही हारते। इस प्रकार दुर्योधन के प्रतिनिधित्व से महाराज धृतराष्ट्र ही का द्यूत में हारना जीतना प्रमाणित होता है। इस लिये उनका राज्य फेर देने का वचन प्रमाणित है। और उसका पालन होना चाहिये।

बलराम—नहीं, नहीं, दुर्योधन का पूरे राज्य पर प्रथम से ही उत्तराधिकार है।

विराट—यह कैसे ?

बलराम—धृतराष्ट्र ज्येष्ठ होने से कुरुकुल के वैध राजा हैं। परन्तु अन्धे होने के कारण महाराज पाण्डु राज काज चलाते थे। पीछे जब वे स्वेच्छा से राज्य परित्याग कर वनवास को चले तब उनके कोई पुत्र न था। उस समय पितामह भीष्म ही एक राज्य के उत्तराधिकारी थे। किन्तु उन्होंने प्रथम ही राज्याधिकार छोड़ा हुआ था। अतः धृतराष्ट्र ही राजा रहे। पाण्डवों का जन्म उसके बाद में हुआ। इसलिये राज्य का जन्मसिद्ध उत्तराधिकार दुर्योधन का ही है।

द्रुपद—परन्तु ज्येष्ठ होने पर भी महाराज धृतराष्ट्र नेत्र दोष से राज्य से वंचित किये जाकर उनके समक्ष ही पाण्डु को राज्य पद दिया गया था, पीछे पाण्डु के वन जाने पर वे राज्य के स्वामी नहीं, राज्य प्रबन्धक कहे जा सकते हैं।

ऐसी अवस्था में दुर्योधन से ज्येष्ठ होने के कारण युधिष्ठिर ही राज्य के उत्तराधिकारी थे। इसी से धृतराष्ट्र महाराज ने उन्हें ही प्रथम युवराज बनाया था। युवराज ही राज्य का भावी उत्तराधिकारी होता है परन्तु महाराज धृतराष्ट्र ने पुत्रों के पक्ष पात के कारण युधिष्ठिर के अधिकार का हरण कर उन्हें केवल आधा राज्य दिया। वह कौरवों ने छल से द्यूत में जीत लिया। आप जानते ही हैं कि द्यूत में राज्य का हारना न्यायानुमोदित नहीं था। फिर भी युधिष्ठिर ने अपना वचन पालन किया। अब उन्हें उनका राज्य मिलना चाहिये।

बलराम—जैसे द्यूत में राज्य हारना न्यायानुमोदित नहीं, उसी प्रकार जीतना भी नहीं। धृतराष्ट्र को राजा न कह कर प्रबन्धक तब कहा जा सकता था जब राज्य का कोई दूसरा राजा होता। कोई राज्य राजा के बिना नहीं रह सकता। इस लिये धृतराष्ट्र ही राजा हुए और उनके पुत्र दुर्योधन राज्य के उत्तराधिकारी।

श्रीकृष्ण—जब धृतराष्ट्र राजा थे, तो उनका राज्य का बटवारा न्यायानुमोदित होना चाहिये। और आर्य ने द्यूत के प्रति जो नीति कही उसके आधार पर युधिष्ठिर यदि द्यूत के वचन का पालन न करते तो भी अन्याय न था। परन्तु अब अपना राज्य मांगना अन्याय तो नहीं है।

बलराम—कृष्ण, मैं तुम्हें अपने मित्रों का प्रिय करने से नहीं रोकूंगा। परन्तु मैं तुम्हारे इस कार्य में सहायक भी नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण—चिर काल तो आर्य....

बलराम—संकोच की आवश्यकता नहीं, मैं तीर्थ यात्रा को जाना चाहता हूँ। मुझे अब तुम विदा दो और अपना कर्तव्य स्वयं निश्चय करो।

युधिष्ठिर—यद्यपि आपके बिना हम अपङ्ग हैं, परन्तु आपका तीर्थानुष्टान पुण्यकर्म है। इसमें बाधा देना भी ठीक नहीं, आज्ञा दीजिये आपका यह दास युधिष्ठिर आपका क्या प्रिय करे।

बलराम—धर्मराज तुम्हारी विनय से मैं सन्तुष्ट हूं। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ।

(प्रस्थान)

श्रीकृष्ण—धर्मराज, अब आप सबसे प्रथम किसी सुयोग्य-दूत के द्वारा सन्धि सन्देश कौरवों के पास भिजवाइये।

द्रुपद—इसके लिये सब शास्त्रों में पारंगत राजसभा के नियमों तथा नीति विनय में चतुर मेरे पुरोहित उपयुक्त हैं। उन्हीं को दुर्योधन के पास भेजा जाय।

श्रीकृष्ण—ऐसा ही हो। किन्तु अब हमें अपने बलाबल का निरीक्षण करना चाहिये।

भीम—हमारे मित्र काशीराज और सैव्य एक एक अक्षौहिणी सैन्य लेकर तो पहिले ही आ चुके हैं।

द्रुपद—मेरी भी एक अक्षोहिणी सैन्य उपस्थित है। मेरे वीर पुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी उसका नेतृत्व करेंगे।

श्रीकृष्ण—धर्मराज, आपके सारथी इन्द्रसेन और अन्य सब रथी, सारथी, दास, दासी द्वारिका से हमारे साथ आये हैं जो यहाँ उपस्थित हैं। इनके सिवा कृतवर्मा सात्यकि, अक्रूर और साम्ब यादव योद्धा भी उपस्थित हैं। हमारे साथ दस हजार हाथी इतने ही अश्व रथ और निखर्व पैदल

सेना भी है। वृष्णि, अन्धक और भोज वंश के बलवान राजपुत्र उनका नेतृत्व करेंगे।

युधिष्ठिर—परन्तु वासुदेव, अब हमें शीघ्र ही सब सम्बन्धी और मित्र राजाओं के पास योग्य दूत भेजकर रण निमन्त्रण देना चाहिये।

सात्यकि—यह कार्य मैं करूंगा।

अर्जुन—तो अब हमें उपप्लव्य नामक सुरक्षित स्थान में रह कर रणसज्जा की तैयारी करनी चाहिये।

कृष्ण—पांचाल राज आप अपने पुरोहित को समझा दीजिये कि वे अपनी नीति युक्त बातों से महाराज धृतराष्ट्र का चित्त बदल दें, तथा पाण्डवों के प्रति प्रीति और सहानुभूति उत्पन्न करें। विदुर उनका समर्थन करेंगे। उन्हें उचित है कि कृप, भीष्म, द्रोण में मतभेद उत्पन्न करें। जिससे वे पाण्डवों का समर्थन करने लगें। और कौरवों का अधिक समय उन्हें अपने पक्ष में एक मत करने में लग जाय।

द्रुपद—ऐसा ही होगा वासुदेव।

(सब का प्रस्थान)

दृश्य सातवाँ

(स्थान—हस्तिनापुर-कौरवों की राजसभा द्रोण,-भीष्म, धृतराष्ट्र, कर्ण, दुर्योधन आदि बैठे है। एक आसन पर पाण्डवों के दूत श्रीकृष्ण बैठे है।)

श्रीकृष्ण—गान्धार राजकुमार शकुनी ने जिस प्रकार कपट द्यूत में हराकर महाराज युधिष्ठिर का राज्य छीन कर उन्हें

बनोवास के नियम में बाँध दिया था वह आप सब लोगों को विदित है। पाण्डवों ने तेरह वर्ष तक उस कठोर नियम का पालन किया है। अब आप लोग ऐसा उपाय सोचें जो कौरवों और पाण्डवों के लिये धर्मानुकूल हो और कीर्तियुक्त हो। पाण्डवों और कौरवों में मेल हो जाय तथा वंशनाश और जन संहार टल जाय, यही मेरे यहाँ आने का उद्देश्य है।

दुर्योधन—(क्रोध मे) कृष्ण, तुम ही सारे अनर्थों की जड़ हो। हमने पाण्डवों का कोई अनिष्ट नहीं किया। जुवारी और व्यसनी युधिष्ठिर स्वयं जुए में राज पाट स्त्री भाई सबको हार गया। दूसरी बार हार कर शर्त के अनुसार ही उन्हें वनोवास करना पड़ा, इसमें हमारा क्या दोष? रहा युद्ध सो हमारे और हमारे सहायकों के सामने देव दानव भी नहीं ठहर सकते। पाण्डवों की तो बात ही क्या?

श्रीकृष्ण—तो तुम पाण्डवों को उनका राज्य भाग देना अस्वीकार करते हो?

दुर्योधन—मैं न्याय से प्राप्त अपने राज्य का स्वामी हूं। उसमें किसी को हिस्सा बंटाने का अधिकार नहीं है।

श्रीकृष्ण—महाराज दुर्योधन, तुम्हें आधे के स्थान पर पूरा राज्य गँवाना पड़ेगा।

दुःशासन (चिल्ला कर) महाराज, आप अधिक बात मत कीजिये। कृष्ण को इस अपमान का उत्तर समय पर हम बाणों से देंगे।

श्रीकृष्ण—कुरुराज दुर्योधन, आपकी प्रीति से मैं कहता हूँ कि आप पाण्डवों को केवल पाँच गाँव ही दे दीजिये।

दुर्योधन—मैं बिना युद्ध के एक सूई की नोक के बराबर भी पृथ्वी नहीं दूंगा।

श्रीकृष्ण—तब परन्तप भीष्म द्रोण और महाराज धृतराष्ट्र सुनें। वे कुल की रक्षा के लिये कर्ण, शकुनी और दुर्योधन जैसे दुरात्माओं को बन्दी करलें तथा पाण्डवों से सन्धि करलें।

दुर्योधन—(खड़े होकर) अरे दुःशासन, इस कटुभाषी कृष्ण को बन्दी कर लो।

सात्यकि—(तलवार खींच कर) क्या मेरे रहते? अरे दुष्ट तेरा काल ही तेरे मुंह से यह ऐसा कहला रहा है। महाराज धृतराष्ट्र, आपने इस हठी अभिमानी और दुष्ट दुर्योधन को राज्य अधिकारी बना कर वंशनाश की समस्या उपस्थित कर दी है।

धृतराष्ट्र—देवी गान्धारी, दुर्योधन को समझाओ।

गान्धारी—पुत्र दुर्योधन, मेरी सुनो, पाण्डवों को उनका देय दे दो।

दुर्योधन—मैं इस सभा में नहीं बैठूंगा। जहाँ इस प्रकार मेरा अपमान होता है।

(कर्ण, शकुनी और दुःशासन के साथ उठकर चला जाता है)

कृष्ण—तो महाराज धृतराष्ट्र, मैं विफल मनोरथ जाता हूँ।

धृतराष्ट्र—मैं विवश हूँ वासुदेव, यह दुष्ट पुत्र मेरे वश में नहीं हैं।

श्रीकृष्ण—तो अब कुल नाश का दोष दुर्योधन ही पर है।

(जाते हैं)

———

दृश्य आठवां

स्थान—विराट नगर

(भीमसेन और सहदेव आते हैं।)

भीमसेन—हुं: केवल पाँच गाँव। धिक्कार है, अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर का तेज नष्ट हो गया प्रतीत होता है।

सहदेव—ऐसा मत कहिए आर्य, महाराज धर्मनीति के स्तम्भ हैं।

भीम—अरे, मेरे पैरों के नीचे से धरती धसकती सी दीख पड़ती है, छी: छी: केवल पाँच गाँव? जान पड़ता है महाराज जुए में राज पाट, पत्नी और भाइयों के साथ अपना क्षात्रतेज भी हार बैठे हैं।

(द्रौपदी आती है)

भीम—यह देखो, यज्ञसेनी के नेत्र अश्रुप्रवाह से धूमिल हो रहे हैं। अरे, इन्हें देख कर तो मैं प्रतिहिंसा से जल उठा।

द्रौपदी—आज तो मध्यम क्रुद्ध दीख रहे हैं।

भीम—मैं क्रोध से जल रहा हूं पांचाली।

द्रौपदी—तो मुझे अपमान में भी सुख है। क्या आपको अपनी प्रतिज्ञा याद है?

भीम—क्यों नहीं, मैं दुःशासन की छाती चीर कर उसका तीन चुल्लू रक्त पीऊंगा, और दुरात्मा दुर्योधन की जांघ इसी गदा से तोड़ कर रक्त भरे हाथों से तुम्हारे केश सींचूंगा।

सहदेव—किन्तु सन्धि? वासुदेव सन्धिप्रस्ताव लेकर जो कौरवों के यहाँ गये हैं?

भीम—मेरे जीते जी सन्धि ? यह सुनने योग्य भी नहीं। क्या वारणावत का लाक्षागृह दाह हम भूल जावेंगे ? विषमय मिष्टान्न, जुए का छल, प्राण और धन हरण करने के प्रयत्न, पांचाली के केशों और वस्त्रों का भरी सभा में खींचा जाना, अरे, ये सब क्या भूल जाने की बातें हैं ? हम क्या इस अपमान को भूल कर शत्रु से संधि करेंगे ? अरे, सौ कौरवों को जो इसी गदा से हनन न करूँ तो मेरा नाम भीम नहीं।

द्रौपदी—आर्य पुत्र, दुःशासन के रक्त से सने हुए हाथों से यदि आप मेरे ये केश न बाँधेंगे तो ये कभी न बँधेंगे।

भीम—यज्ञसेने ये शीघ्र बँधेंगे, तुम धीरज रखो। यह जगमद मर्दनकारी गदा मेरे हाथों में है। मेरे क्रोध को न महाराज दूर कर सकते हैं, न अर्जुन, न अन्य कोई।

सहदेव—आर्य, आप यदि क्रोध करेंगे तो महाराज को रोष होगा।

भीम—महाराज को रोष ? क्या महाराज भी रोष करना जानते हैं ? अरे, यदि ऐसा ही होता तो मैं काहे को क्रोध करता। काहे को पांचाली को भरी सभा में लाज खोनी पड़ती, व्याधों के समान वन-वन हमें घूमना पड़ता, अर्जुन को नर्तक और पांचाली को दासी बनना पड़ता।

सहदेव—आर्य, यदि महाराज सन्धि करें ?

भीम—तो मैं विद्रोह करूंगा, मैं सन्धि स्वीकार नहीं करूंगा। मैं न महाराज का अनुशासन मानूंगा न वासुदेव का अनुरोध।

सहदेव—आर्य, सन्धि में गूढ़ार्थ है।

भीम—कैसा गूढ़ार्थ।

सहदेव—महाराज ने केवल पांच गांव मांगे हैं।

भीम—छीः केवल पांच गांव।

सहदेव—सुनिये तो।

भीम—गूढ़ार्थ कहो।

सहदेव—कहता हूँ, इन्द्रप्रस्थ, वारणावत, जयन्त, वृकप्रस्थ, तथा और एक ग्राम।

भीम—तो फिर ?

सहदेव—इन में उन स्थानों का संकेत है जहाँ हमारे साथ अपकार हुआ है।

भीम—इससे क्या ?

सहदेव—दुर्योधन कभी इन गांवों को न देगा, सन्धि न होगी, तथा कुलनाश के कलंक से भी हम बचे रहेंगे।

भीम—कुलनाश का कलंक ? अरे यह कलंक तो उन्हें लगना चाहिये, जिन्होंने कुल का अपमान किया था, छल किया था। अरे, द्रौपदी के इन रूखे केशों को तो देखो, पांचों पाण्डवों के रहते उसकी यह दशा ?

द्रौपदी—आर्य पुत्र, ये केश तो घर-घर चर्चा के विषय हो गये।

भीम—अरे ! यहाँ तक ? राजसुता, तुम धैर्य रखो। मैं शीघ्र ही दुःशासन के रक्त से तुम्हारे केश सींचूंगा।

(युधिष्ठिर आते हैं)

भीम—महाराज, अभिवादन करता हूँ।

युधिष्ठिर—कृत संकल्प हो वीर !

सहदेव—आर्य अभिवादन करता हूँ।

युधिष्ठिर—चिरञ्जीवी रहो।

द्रौपदी—आर्य पुत्र, इधर आसन है, विराजिये।

युधिष्ठिर—यह बैठा (बैठ कर) भाई भीम, क्या कारण है

कि तुम्हारे नेत्र लाल हो रहे हैं, भुजा फड़क रही हैं, श्वास के वेग से नथुने फूल रहे हैं, किसने तुम्हें क्रुद्ध किया है।

द्रौपदी—आपने, आर्य पुत्र? मध्यम आप पर क्रुद्ध हैं।

युधिष्ठिर—किस लिये भाई?

भीम—इस लिये कि महाराज अपना क्षात्र तेज भी जुए में हार बैठे।

युधिष्ठिर—भाई, मैं वचनों से बँधा हूँ, तुम समय की प्रतीक्षा करो।

भीम—महाराज, आत्माभिमानी जन या तो सिंहासन पर बैठते हैं, या चिता की राख पर।

युधिष्ठिर—भाई, क्रोध को जीतना ही सच्ची वीरता है। पाण्डव न निर्लज्ज हैं न कायर, परन्तु हमें धीरज धारण करना चाहिए।

भीम—महाराज, अपना राज्य और अपनी स्त्री जीते जी कायर ही दूसरों को सौंपते हैं।

युधिष्ठिर—भाई, शत्रु की भाँति बन्धु के प्रहार सहने में मैं समर्थ हूँ। परन्तु तुम्हें यह न भूलना चाहिये कि कालचक्र अप्रतिहत गति से चलता ही रहता है, भविष्य के काले बादलों में जो वज्र छिपा है, उसे मैं देख रहा हूँ, तुम नहीं।

द्रौपदी—महाराज, जिनके अंग पर चन्दन कुंकुम और अगर का लेप होता था वे धूल से भरे पाँव प्यादे वन कंदरों में घूमते फिर रहे हैं, बिना बिछौना सोते हैं, और कन्दमूल खाते हैं। आप कहते हैं धैर्य! पर धैर्य तो मेरे आँसुओं के साथ बह गया।

युधिष्ठिर—ऐसा नहीं पांचाली, विचारो तो कि कालचक्र किस भाँति अपना कार्य कर रहा है। दुर्योधन मदान्ध है,

वह भविष्य को नहीं देखता, यादव एकपक्ष कर रुष्ट हो कर उसे छोड़ रहे हैं। और हमारे सद्व्यवहार से हमारे प्रिय बन रहे हैं. यादवों के मित्र और सहायक भी कम नहीं हैं। वे सब अन्त में हमारी सहायता करेंगे। बुद्धिमान प्रबल शत्रु को देखकर विचलित नहीं होते, अवसर की प्रतीक्षा करते हैं। यह धैर्य का ही काल है. पराक्रम का अभी आवेगा। कोई यह न कहे कि सत्य व्रतज्ञ युधिष्ठिर ने प्रतिज्ञा भंग की। तेरह वर्ष तो अब बीत ही गये।

भीम—आपने सन्धि संदेश भेजा है, वहाँ से युद्ध संदेश आवेगा।

युधिष्ठिर—तब तो भाई भीमसेन के लिये वह आनन्द का समाचार होगा। भीम के भुजबल को शत्रु को आस्वाद मिलेगा।

भीम—और मेरी चिर आकांक्षा भी पूर्ण होगी।

(नेपथ्य में मेघगर्जन जैसा शब्द होता है)

भीम—ओह! यह असमय मेघगर्जन कैसा? क्या किसी ने रणनाद किया? दुन्दुभी बजाई? या द्रौपदी का क्रोध मूर्तिमान हो गया. अथवा कौरवकुल का समूल नाश करने को आँधी, उल्कापात, मेघ, वज्र, भूकम्प आदि आये।

(चर आता है)

चर—(अभिवादन करके) महाराज की जय हो। भगवान् वासुदेव कौरवों से बात करके आ रहे हैं।

युधिष्ठिर—अच्छा! तो यह उन्हीं के रथ का घनरव है। भाई भीम, चलो हम आगे बढ़ कर यादव नन्दन का अभिनन्दन करें। (सब जाते हैं)

———

अङ्क पांचवाँ

दृश्य पहिला

स्थान—पाण्डवीय सेना का शिविर। आगे २ कृष्ण और पीछे अर्जुन आते हैं)

अर्जुन—(हाथ उठाकर) सुनो, अन्धक, वृष्णि, विराट, पांचाल, आदि हमारे अक्षोहिणी पतियों और महारथियों, सुनो, सत्यव्रत युधिष्ठिर आज धर्मयुद्ध की घोषणा करते हैं। चलो, कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र में कौरव सेना को सूखे ईंधन की भांति भस्म करें। अब कुलनाश का पातक उन पर है जो धूर्त, स्वार्थी, और झूठे हैं। धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर पर नहीं।

भीम—भड़की, महाराज की क्रोधाग्नि भड़की, अब कुरुकुल इसमें भस्म हो। वह प्रलय के मेघगर्जन की भांति रणदुन्दुभी बजने लगी !

(द्रौपदी आती है)

द्रौपदी—अन्त में रणभेरी बजकर ही रही।

भीम—शुभे, यज्ञ समारोह है।

द्रौपदी—यज्ञ कैसा आर्यपुत्र ?

भीम—रणयज्ञ यज्ञसेनी, हम चारों भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव इस यज्ञ के ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु हैं। सखा कृष्ण पुरोहित और महाराज युधिष्ठिर यजमान। पाप शान्ति इस यज्ञ का फल होगा।

(सहदेव आते हैं)

सहदेव—आर्य, प्रसन्न हों, गुरुजनों ने हमें अपना शौर्य प्रकट करने की आज्ञा देदी।

भीम—तुम्हें विजय मिले प्रिय, चलो आज क्षत्रिय जन्म सफल करें।

द्रौपदी—आर्यपुत्र मुझे अब धैर्य कैसे होगा।

भीम—अब धैर्य कैसा प्रिये, शत्रु का रक्तपान करके मैं शीघ्र प्रतिज्ञा पूरी करता हूँ।

द्रौपदी—आर्य पुत्र का विजयी मुख देखूँगी तो जानूँगी।

भीम—जहां हाथी हाथी से, रथी रथी से टकरा कर गिरते हैं। जहाँ वसा मज्जा रक्त और मांस की कीचड़ में रथियों के रथ के पहिए धँस जाते हैं, जहाँ शृंगाल हाऊ-हाऊ करके रक्तपान को आ जुटते हैं, जहाँ भूत बैतालों के स्वामी खप्पर ले रक्तपान करते हैं, उस रण भूमि में विचरण करना पाण्डव खूब जानते हैं।

कृष्ण—मित्र पार्थ, चलो चलें, सेना की व्यवस्था करें।

(सब जाते हैं)

दृश्य दूसरा

स्थान—कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि।

(अश्वत्थामा आते हैं)

अश्वत्थामा—यह संग्राम सागर का महारव है कानों के पर्दे फट रहे हैं। घायल हाथियों की चिंघाड़ मरते हुए भटों के चीत्कार और अश्वों की हिनहिनाहट, योद्धाओं की हुंकार सब

मिल कर कैसा भयानक दृश्य उपस्थित कर रहे हैं। वे मरते हुए हाथी निरूपाय सूंड़ उठा २ कर चिंघाड़ रहे हैं। टूटे हुए रथों के चक्र ध्वज धुरे जहाँ तहाँ पड़े हैं। बड़े धनुर्धर भूमि में लोट रहे हैं। उनके रत्न जटित मुकुट इधर उधर लुढ़क रहे हैं। परन्तु यह तो असाधारण कोलाहल है। आज परन्तप पिता समर में असह्य तेज प्रदर्शित कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है अर्जुन, सात्यकी, अथवा दुर्मद भीम ने उन्हें क्रुद्ध कर दिया है। अरे, कुपित होने पर पिता के बाणों से त्रिलोकी में कोई बच सकता है? (देख कर) लोग भागे आ रहे हैं। अवश्य पिता ने भैरव संहार प्रारम्भ कर दिया है। देखूं, आगे चलूँ, पिता का पराक्रम देखूं (आगे बढ़ता है। बहुत से लोग भागते आ रहे हैं) अरे, यह क्या बात है। महारथी कर्ण शकुनी आदि भी रण से भागे आ रहे हैं। पिता के सेनापति होने पर सेना की यह दशा? अच्छा मैं रोकता हूँ।

सबलोग—भागो-भागो।

अश्वत्थामा- अरे कायरों, युद्ध से विमुख होकर भागते हो?

(सारथी अश्वत्थामा का घायल अवस्था में प्रवेश)

सारथी—कुमार, रक्षा करो, रक्षा करो।

अश्वत्थामा—किस की?

सारथी—मेरी, कुमार, मेरी।

अश्वत्थामा—तुम त्रैलोक्य रक्षक मेरे पिता के सारथी हो, तुम्हें किसी से रक्षा की याचना करने से क्या काम?

सारथी—हाय कुमार, आचार्य अब कहाँ?

अश्वत्थामा—क्या कहा? क्या पूज्य पिता.......

सारथी—देवलोक में गए, हा तात्। (मूर्छित हो जाता है)

अश्वत्थामा—हाय पिता, तुम त्रैलोक्य में एक मात्र धनुर्धर थे। किसने तुम्हारा हनन किया !

सारथी—(होश में आकर) कुमार, आचार्य ने वीर गति पाई।

अश्वत्थामा—उन्हें मारा किसने, क्या भीम ने? जिसे वे अति प्यार करते थे?

सारथी—नहीं, नहीं।

अश्वत्थामा—क्या अर्जुन ने, जिन पर वे मेरे समान ही वात्सल्य भाव रखते थे?

सारथी—हाय, नहीं।

अश्वत्थामा—तब कृष्ण ने?

सारथी—नहीं कुमार नहीं।

अश्वत्थामा—और तो कोई त्रिलोकी में ऐसा नहीं है जो शस्त्र हाथ में रहते उन्हें मार सके।

(कृपाचार्य आते हैं)

कृपाचार्य—कुरुराज दुर्योधन को धिक्कार है, उसके सब महारथियों को धिक्कार है। सत्य की डींग हाँकने वाले युधिष्ठिर को धिक्कार है। निरर्थक शस्त्र धारण करने वाले सब राजाओं को भी धिक्कार है। मेरी इन आँखों ने उस दिन चुपचाप निष्क्रिय बैठ कर द्रौपदी का केश कर्षण देखा था, आज महात्मा द्रोण का केश कर्षण देखा।

(दोनों हाथ से मुँह ढाँप कर रोते हैं)

अश्वत्थामा—(उन्मत्त की भाँति) क्या कहा? केश कर्षण?

कृपाचार्य—सारा संसार कहता था कि युधिष्ठिर ने जन्म भर कभी झूठ नहीं बोला। पर आज गुरु वध के लिये उसने झूठ बोला। उसकी जन्म जन्म की तपस्या भ्रष्ट हो गई।

अश्वत्थामा—युधिष्ठिर ने झूठ बोला ?

कृपाचार्य—उसने कहा, अश्वत्थामा मारा गया, पर मरा था इस नाम का हाथी। युधिष्ठिर ने हाथी शब्द स्पष्ट नहीं कहा। आचार्य ने वह नहीं सुना, पुत्र शोक से अधीर हो उन्होंने तत्क्षण ही शस्त्र रख दिये।

अश्वत्थामा—हाय मेरे मरने की झूठी खबर सुन कर ?

कृपाचार्य—हाँ पुत्र, वे अस्त्र त्याग वहीं रण भूमि में दोनों हाथों से सिर पकड़ कर और हा पुत्र अश्वत्थामा, कह कर विलाप करने लगे।

अश्वत्थामा—हाय, हाय, मुझ अधम के मरने की झूठी खबर सुन कर।

कृपाचार्य—अश्रुधारा से उनका सारा मुँह धुल गया, इसी समय नीच धृष्टद्युम्न ने आकर उनके केश पकड़ कर खींचे और यह मैं अपने पिता के अपमान का बदला ले रहा हूँ, कह कर उनका सिर काट लिया।

अश्वत्थामा—हाय-मेरे लिये पिता ने प्राण और बाण दोनों त्यागे।

कृपाचार्य—वही धृष्टद्युम्न, वह देखो, जीवित शिविर को लौट रहा है।

अश्वत्थामा—क्या सारे धनुर्धारियों के सम्मुख शोक सन्तप्त विरत शस्त्र मेरे पिता का उस पापी ने वध किया ? मेरे पिता का सिर छू लिया ?

कृपाचार्य—नहीं तो क्या ?

अश्वत्थामा—हाय, जब पिता ने शस्त्र ही त्याग दिया तो धृष्टद्युम्न तो क्या एक कुत्ता भी उनका सिर छू सकता था। परन्तु मैं उनका पुत्र दिव्यास्त्रों से सज्जित रथियों के मस्तक पर चरण रख सकता हूँ। अरे ! दुरात्मा पाँचाल कुल कलंक, अरे!

निर्लज्ज, क्या तू अश्वत्थामा को भूल गया, जो पाण्डवों और पांचालों की सेना के धुर्रे उड़ा देने की अकेला ही सामर्थ्य रखता है। अरे! पाखण्डी युधिष्ठिर, यही तेरा सत्य व्रत था। अरे! अर्जुन, सात्यकी, भीम, कृष्ण, तुम्हें धिक्कार है। जो सुर असुर और मर्त्यों में पूज्य थे उन वृद्ध आचार्य का सिर इस नीच द्रुपद पुत्र ने छुआ? और तुम सब देखते रहे? अच्छा अच्छा अरे पाण्डवों, मत्स्यों, सौमकों, मागधों, क्षत्रिय कुल कलंकों ठहरो, पिता के सिर छूने का दण्ड भोगने को तैयार रहो। सारथी, हमारा रथ लाओ।

सारथी—जैसी कुमार की आज्ञा। (जाता है)

(कर्ण और दुर्योधन रथ पर आते हैं)

दुर्योधन—(रथ से उतर कर) आचार्य पुत्र, आओ अपने दग्ध हृदय को मेरे हृदय से लगाओ। तुम्हारी भुजा का स्पर्श तुम्हारे पिता के स्पर्श के तुल्य ही सुखस्पर्श है।

(अश्वत्थामा रोता है)

कर्ण—गुरु पुत्र, शोक न करो। धीरवीर शोक नहीं करते।

अश्वत्थामा—राजन्, जब आपका मुझ पर इतना स्नेह है तो फिर शोक से क्या? परन्तु कुरुराज, यदि पुत्र के जीते जी पिता का केश कर्षण हो तो लोग क्यों पुत्र की कामना करें।

कर्ण—द्रोणपुत्र, सब के रक्षक जब आचार्य ने ही शस्त्र त्याग दिया तब हम क्या करते।

अश्वत्थामा—सत्य है, परन्तु मैं द्रोणपुत्र अश्वत्थामा हाथ उठा कर कहता हूँ कि पाण्डवों की सेना में जिसे शस्त्र उठाने का गर्व है, पांचाल कुल में जो उत्पन्न हैं, और जो उत्पन्न होने वाले हैं, मैं उनका बीज नाश करूंगा। जामदग्नेय ने

शत्रुओं के रक्त से सरोवर भर कर वैर चुकाया था, वही मैं द्रोणपुत्र करूंगा।

दुर्योधन—धन्य आचार्य पुत्र, आप ही इस योग्य हैं। अब मुझे भीष्म और द्रोण के निधन का परिताप नहीं।

कृपाचार्य—तो राजन्, योग्य को योग्य स्थान पर नियुक्त कीजिए। द्रोणपुत्र को कौरव चमू का सेनापति बनाकर अभी अभिषेक कीजिए।

दुर्योधन—यह तो उचित ही होता, परन्तु मैं यह पद अंगराज कर्ण को दे चुका।

कृपाचार्य—राजन, शोकदग्ध अश्वत्थामा की उपेक्षा ठीक नहीं।

अश्वत्थामा—राजन, इस वितण्डा से क्या? कल सूर्योदय के साथ आप सुनेंगे कि पृथ्वी पाण्डवों और सोमकों से शून्य हो गई।

कर्ण—(हंस कर) गुरुपुत्र, यह कहना जितना सहज है उतना करना नहीं।

अश्वत्थामा—अंगराज, यह मेरे शोकोद्‌गार हैं। मैंने किसी वीर के अपमान के लिये नहीं कहे।

कर्ण—तो फिर प्रलाप से क्या? जब होगा तो हम भी देखेंगे।

अश्वत्थामा—अरे सूत पुत्र, तू मुझ दुःखित अश्रुपूर्ण गुरु पुत्र का अपमान करता है। क्या तू मेरे बाहुबल से परिचित नहीं।

कर्ण—अरे गुरुपुत्र, अभी तुम बालक हो और नहीं जानते कि मैं कर्ण तुम्हारे पिता के समान रणक्षेत्र में शस्त्र त्यागन नहीं करूंगा।

अश्वत्थामा—तू, विश्वपूजित मेरे पिता पर आक्षेप करता

है, उन्होंने शोक मग्न हो द्रुपद सुत का हाथ नहीं रोका। अब यह मैं अपना बाँया चरण तेरे सिर पर रखता हूँ, रोक।

(पैर उठाता है)

दुर्योधन—गुरुपुत्र, यह क्या, क्रोध को रोकिये।

कर्ण—अरे! आत्मश्लाघी ब्राह्मण, तू ब्राह्मण होने से अवध्य है, नहीं तो जो पैर तूने उठाया था उसे मैं अभी काट डालता।

अश्वत्थामा—अरे अधम, यदि मैं जाति से अवध्य हूँ, तो ले, जाति को त्यागता हूँ। तू शस्त्र ले। (यज्ञोपवीत तोड़ डालता है)

(दोनों शस्त्र लेकर भिड़ जाते हैं)

दुर्योधन—आचार्य पुत्र, क्षमा करो, शस्त्र मत पकड़ो।

कृपाचार्य—अंगराज, शान्त हो शस्त्र रख दो।

अश्वत्थामा—कुरुराज, मैं अभी इसे पीस कर रख दूंगा।

कर्ण—आचार्य, अब मुझे मत रोकिये।

दुर्योधन—अरे, यह तो जो करणीय था उससे विपरीत ही हो रहा है। इससे राजकुल पर विपत्ति आवेगी।

कृपाचार्य—पुत्र, अभी तुम शान्त रहो। कर्ण कुरुसेना का अधिपति है, इस समय सेना में फूट डालना ठीक नहीं।

अश्वत्थामा—तो जब तक यह पापात्मा अर्जुन के बाणों से हतप्राण होकर युद्ध भूमि में पतित नहीं होता, मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा।

कर्ण—(हंस कर) शस्त्र छोड़ना तो तुम्हारा कुल धर्म है।

अश्वत्थामा—(क्रोध से दांत पीस कर) और तुम जैसों का शस्त्र ग्रहण करना ही निष्फल है।

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

भीम—आह, दुरात्मा कौरव कुल कलंक आज तू मेरे भुजपाश से निकल कर नहीं जा सकता। अरे, कर्ण, दुर्योधन, सुबल, शकुनी आदि अभिमानी धनुर्धारियों, जिस नीच ने द्रोपदी के केश खींचे थे, और भरी सभा में वस्त्र खींचे थे यह मैं भीम उसी दुःशासन की छाती फाड़ कर तीन चुल्लू रक्त पीता हूँ, जिसे साहस हो रोके—

अश्वत्थामा—(हंस कर) अरे सूतपुत्र, जा जा वह वृकोदर भीम कुरुराज दुर्योधन के भाई दुःशासन का हृदय विदीर्ण कर रक्त पान कर रहा है, उसके प्राणों की रक्षा कर।

कर्ण—अरे दुरात्मा भीम, यह मैं आया।

(जाता है)

दुर्योधन—भाई दुःशासन, मेरे रहते तुझे कौन छू सकता है। अरे, सारथी रथ इधर ला।

(रथ पर चढ़ कर जाता है)

(सब जाते हैं)

दृश्य तीसरा

स्थान—पाण्डवों का अन्तःपुर।

(लोग भय से भागते हुए आते हैं, रक्त में लतपत भीम आते हैं)

भीम—अरे योद्धाओं, डरो मत, मैं दुःशासन को मार कर उसकी छाती का तीन चुल्लू रक्त पी कर तृप्त हूँ। गर्वित कर्ण और महाबली शल्य के देखते ही देखते मैंने दुरात्मा दुःशासन का हृदय चीर डाला। अब इन रक्त भरे हाथों से द्रौपदी के

केशों का शृङ्गार करने जा रहा हूँ, मुझे भगवती द्रौपदी के आवास का मार्ग बताओ।

एक भट—इधर से महाराज, इधर से।

भीम—(इधर उधर देख कर—उच्च हास्य करके) आओ कृष्णा, यह मेरी अंजलि में दुःशासन का रक्त भरा है। इसीसे मैं तुम्हारे केशों को सींच कर उनका शृङ्गार करूंगा। आज प्रतिज्ञा महोत्सव है। आज मैं आनन्दित हूँ।

द्रौपदी—आर्य पुत्र, मेरी अवज्ञा पर अट्टहास करके कुचेष्टा करने वाला दुर्योधन तो अभी तक जीवित है फिर अभी प्रतिज्ञा महोत्सव कैसा ?

भीम—ठीक है, उसकी जाँघ इस गदा से तोड़ कर ही प्रतिज्ञा महोत्सव करूंगा। अभी मैं तुम्हारे केशों को इस रक्त से सींचता हूँ।

(केशों में रक्त की अंजलि छोड़ता है)

(दासी आती है)

दासी—महारानी ?

द्रौपदी—ऐं ! किसने महारानी कहा ?

दासी—महारानी की जय हो, लाइए आपकी रूखी इन अलकों को आज तेरह बरस बाद मैं सुगन्धित जल से शुद्ध करके गूंथ दूं। महारानी, आज मैं अपनी चिरभिलाषा पूर्ण करूं। न जाने कितनी बार बेला जुही जूथिका आदि विविध पुष्पों को मैंने वाष्प भरे नयनों से देखा है। हाय, ये स्निग्ध अलकावलियां कैसी रूखी हो गई हैं, जैसी तपस्वियों की जटा। महारानी, आज मैं महारानी कहकर धन्य हुई अब आपका शृङ्गार करके भी धन्य होऊँगी।

द्रौपदी—तो शुभे, जैसी तेरी इच्छा।

(दासियां द्रौपदी के केशों को सुगन्धित जल में धोती हैं)

दृश्य चौथा

स्थान—व्यास सरोवर का किनारा।
(सारथी मूर्छित दुर्योधन को रथ में डाल कर लाता है।)

सारथी—अहा, कैसा सुन्दर स्थान है। शीतल पवन बह रही है। कैसे सुन्दर फूल खिले हैं। जल में ये कमल कैसे शोभायमान हैं, वटवृक्ष के नवीन पत्ते वायु से हिलते कैसे प्रिय दीख रहे हैं। युद्ध से श्रान्त वीरों के लिये यही स्थान सर्वोत्तम है। यहाँ की चन्दन से लेप के समान शीतल और सुगन्धित वायु से महाराज को आराम मिलेगा।
(टूटी ध्वजा वाला रथ वटवृक्ष की छाया में ले जाता है, चारों ओर देखकर)
नहीं, यहाँ कोई नहीं है। भीम के वीभत्स और भयंकर वेश को देखकर सब भाग गये हैं। ओह बड़ा कष्ट है, द्रोण ने अभय दान देकर भी जयद्रथ की रक्षा नहीं की। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये दुःशासन का उसी प्रकार हृदय चीर डाला जैसे व्याघ्र हरिण को चीर डालता है। अवश्य विधाता कुरुकुल से विमुख है। (राजा को देखकर) अभी तक महाराज मूर्छित हैं। (दीर्घ श्वास लेकर) हाय, सब ही कुरुकुमार एक एक करके मारे गये। कौरव उस वन के समान प्रतीत होता है जिसे किसी मदमत्त हाथी ने नष्ट कर डाला हो? और केवल एक साल का वृक्ष रह गया हो। हाय रे दुर्भाग्य, क्या भीम की दूसरी भयानक प्रतिज्ञा भी पूरी होगी? उस दुर्दम्य को जब तक गदा उसके हाथ में है कौन रोकेगा?

दुर्योधन—(होश में आकर) मैं आ रहा हूँ दुःशासन, मैं आ रहा हूँ। (इधर उधर शस्त्र खोजता है)

सारथी—महाराज, यह विश्राम का काल है। घोड़े थक गये हैं, रथ खींच नहीं सकते।

दुर्योधन—(रथ से उतर कर) तो रथ का क्या काम है। मैं पैदल ही गदा लेकर रणस्थल में जाता हूँ—वहाँ भीम दुरात्मा मेरे भाई दुःशासन को आक्रान्त कर रहा है।

सारथी—महाराज, कैसे कहूँ।

दुर्योधन—कहो, अकथ्य हो तो भी कहो।

सारथी—दुरात्मा भीम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका।

दुर्योधन—हाय भाई दुःशासन, अब तुम बोलोगे भी नहीं।

सारथी—महाराज, यही समय धीरवीरजनों की स्थिरता का है।

दुर्योधन—हाय, मैं ही अधम तुम्हारी दुर्दशा का कारण बना।

(शोक से हाय करके गिर जाता है)

सारथी—महाराज धीरज।

दुर्योधन—धिक्कार है, सूत तुमने भाई को वलि होने दिया और मुझे बचा लाये।

सारथी—महाराज, महारथियों के वाणों से विद्ध होकर आप अचेत हो गये थे।

दुर्योधन—हाय, दुःशासन के रक्त से गीली भूमि पर मैं भी क्यों न सोया। अब मुझे राज्य से क्या जीवन से भी क्या।

(घायल सुन्दरक आता है)

सुन्दरक—(देखकर) हाय, ग्यारह अक्षोहिणी के अधिपति; सौ भाइयों में ज्येष्ठ, भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, शल्य, कर्ण आदि अप्रतिभ महारथियों के नेता, सम्पूर्ण पृथ्वी के एक छत्र स्वामी महाराज आज इस प्रकार रक्त और धूल में सने भूमि में पड़े हैं।

(पास जाकर)

महाराज की जय हो।

दुर्योधन—अरे, सुन्दरक, कह कैसा है ?

सुन्दरक—महाराज, कुमार अश्वसेन की मृत्यु से विदीर्ण हृदय-क्या कहूँ।

दुर्योधन—तो प्रिय दर्शन कर्ण पुत्र अश्वसेन भी काम आया ?

सुन्दरक—राजन, अब शोक से क्या ?

दुर्योधन—अरे शोक भी पुण्यशाली ही पाते हैं। मुझ पाषाण हृदय के लिये शोक संताप ही क्या ?

सुन्दरक—महाराज, धीरज धरिये और करणीय कीजिये।

दुर्योधन—ठीक कहते हो, करणीय करूंगा। पर आज नहीं कल सूर्योदय होने पर। मैं घायल और थकित हूँ। युद्ध करने की शक्ति मुझ में नहीं है मैं आज रात यहीं विश्राम करूंगा। सूत, तुम रथ ले जाओ, और गुरु पुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्य को गुप्त रूप से यहाँ भेज दो।

सारथी—जैसी महाराज की आज्ञा।

(जाता है। दुर्योधन जल में छिप जाता है)

——————

दृश्य पांचवाँ

(स्थान—व्यास सरोवर के तट पर एक वट वृक्ष के नीचे अकेला दुर्योधन बैठा है। अंग घायल है वस्त्रों में धूल कीचड़ लगी है)

दुर्योधन—हाय, ग्यारह अक्षोहिणी सेना का अधिपति मैं, आज इस दशा को प्राप्त हुआ। यह भाग्य की विडम्बना ही

है। नहीं तो भीष्म-द्रोण के रहते यों कुरुकुल ध्वस्त होता (चौंक कर) कौन आ रहा है ?

(चर आता है)

चर—महाराज की जय हो।

दुर्योधन—जय तो शत्रुओं की हो रही है। कह, अंगराज के समाचार कह।

चर—महाराज, महावीर अंगराज ने ऐसा युद्ध किया कि क्षण भर को सूर्य भी थम कर वह युद्ध देखने लगे। यदि भीम नकुल कृष्ण और पांचाल योद्धा अर्जुन के रथ को अपने रथों से न ढक लेते तो अर्जुन का काल आ ही गया था।

दुर्योधन—तो अर्जुन मरा नहीं।

चर—नहीं महाराज, जब ऐसा घनघोर युद्ध हो रहा था, तभी शल्य ने कहा—कर्ण, रथ के घोड़े मर चुके हैं चक्रनाभि और युगंधर टूट चुके हैं। अब यह रथ भीम अर्जुन से युद्ध करने योग्य नहीं रहा।

दुर्योधन—हाय रे दुर्भाग्य, फिर, फिर।

चर—फिर महाराज, कर्ण ने रथ को त्याग दिया। उन पर पाण्डव बाण वर्षा करते रहे। इसी समय दूसरा रथ आ गया।

दुर्योधन—बड़ी बात हुई, बड़ी बात हुई, फिर ?

चर—फिर महाराज, अंगराज ने रथारूढ़ हो कवच त्यागा। प्राणों का मोह छोड़ ऐसा युद्ध प्रारम्भ किया कि लोग त्राहिमाम करने लगे।

दुर्योधन—वाह अंगराज, वाह।

चर—महाराज, घोर संग्राम छिड़ गया। मैं कैसे वर्णन करूं ? पृथ्वी रुण्ड मुण्ड तथा मरे हुये वीरों से पट गई, युधिष्ठिर ने कर्ण के पांच अभिमन्त्रित बाण मारे। कर्ण ने उन्हें

काट कर ब्रह्मबाण प्रयोग किया और युधिष्ठिर के कवच काट उसके अश्व रथ सब को टुकड़े टुकड़े कर दिया। इस पर युधिष्ठिर रथ पर चढ़ कर एक ओर भाग निकले। उनके रक्षक योद्धाओं को मार कर कर्ण ने उनका कन्धा पकड़ लिया। परन्तु कुन्ती को दिये हुए अपने वचन को याद करके उन्हें मारा नहीं। केवल दुर्वचन कह कर छोड़ दिया।

दुर्योधन—वाह मित्र, कर्ण फिर-फिर।

चर—फिर महाराज भीम ने भीषण युद्ध कर के अंगराज को मूर्छित कर दिया। और आपके कई भाइयों को जो उनकी रक्षा कर रहे थे मार गिराया। इसके बाद अंगराज ने सचेत होकर विकट संग्राम किया। उनसे डर कर भीम मरे हुए हाथियों के पेट के नीचे छिप गया तब वीरवर अंगराज ने उसके कंठ में धनुष डाल कर खींच लिया तथा ताड़ना करके छोड़ दिया।

दुर्योधन - हाय, हाय केवल ताड़ना करके।

चर—हाँ महाराज, सत्यव्रती अंगराज पाण्डवों को वध न करने का प्रण कर चुके थे। तभी अर्जुन ने दिव्य बाणों का मेह वर्षा कर अंगराज को व्याकुल कर दिया।

दुर्योधन—हाय, दुर्जय अर्जुन, फिर।

चर—इसी समय महाराज के रथ का चक्र भूमि में धँस-गया और रथी उतर कर चक्र निकालने लगे। उधर अर्जुन ने बाणों से उनके अंग अंग को वेध डाला। उनके शरीर से रक्त की धारा बह निकली। और वे भूमि में गिर कर छटपटाने लगे। और लम्बी-लम्बी सांस लेने लगे।

दुर्योधन—हाय मित्र अंगराज, मेरे कारण तुम्हें भूमि लुण्ठित होना पड़ा। अरे कह, क्या प्रिय दर्शन ने कुछ संदेश कहा।

चर—हाँ महाराज, उन्होंने बाण की नोक अपने लोहू में भिगो कर मेरे वस्त्र पर ये शब्द लिख दिये—मैं दुःशासन के बधिक को न मार सका-अब तुम बाहुबल से या आंसुओं से बदला लेना।

दुर्योधन—अरे मित्र कर्ण।

चर—महारथी इस प्रकार भू लुण्ठित हुए, उधर शल्य ने अश्वों की लगाम और चाबुक छोड़ दी, बाणों से उनका शरीर बिध रहा था और रक्त की धार बह रही थी। वे शून्य भाव से रथ पर बैठे थे। शून्य रथ को अश्व आप ही शिविर में ले गये।

दुर्योधन—अरे हृदय फट जा, भीष्म, द्रोण के मरने पर जो मेरा सबसे बड़ा आधार था वह कर्ण भी अब न रहा। अब तो मेरा कोई गुरु मित्र या बन्धु बचा ही नहीं।

चर——महाराज धीरज।

दुर्योधन—तो चर, मेरा रथ ला, आज मैं पृथ्वी को पाण्डवों से विहीन करूंगा! (रथ आने का शब्द आता है) यह रथ आ रहा है।

चर—महाराज, इस पर भगवती गान्धारी और महाराज धृतराष्ट्र पधार रहे हैं!

दुर्योधन—अरे, तो अब कहाँ छिपूं? कैसे पिता को मुँह दिखाऊँ?

(रथ मे धृतराष्ट्र आते है)

धृतराष्ट्र—संजय, बताओ मेरा पुत्र दुर्योधन कहाँ है. हाय, कौरव वन का अब वही एक अंकुर रह गया।

गान्धारी—सौ पुत्रों में अकेला।

संजय—महाराज, वे उधर वट वृक्ष के नीचे अकेले बैठे हैं।

धृतराष्ट्र—अकेले, राज परिच्छद नहीं है । ग्यारह अक्षौहिणी सेना का अधिपति अकेले ? यह कैसी भाग्य विडम्बना है।

गान्धारी—यदि वह मेरा पुत्र जीवित है तो मुझसे बोलता क्यों नहीं ?

संजय—आप रथ से उतरिए।

(सहारा देकर उतारता है, फिर दुर्योधन के पास जाकर)

महाराज की जय हो, बड़े महाराज और महारानी आए हैं, आप क्या उन्हें देखते नहीं ?

(दुर्योधन चुपचाप भूमि ताकता है)

धृतराष्ट्र और गान्धारी—(टटोलते हुआ) कहाँ, कहीं भी तो पुत्र नहीं है ।

(दुर्योधन रोता हुआ पैरों पर गिर पडता है)

गान्धारी—अरे वत्स, क्या तुम घावों की व्यथा से बहुत पीड़ित हो (शरीर पर हाथ फेरती है)

धृतराष्ट्र—पुत्र दुर्योधन, तुम क्या मुझसे बोलोगे भी नहीं।

दुर्योधन—मैं पापात्मा, क्या कहूँ। अपनी आंखों से मैंने भाइयों और परिजनों का विनाश देखा-भीष्म द्रोण का हनन मेरे सम्मुख हुआ। मैं कुलघाती-आपका पुत्रघातक हूँ-माता मुझे शाप दो, भस्म कर दो।

गान्धारी—अरे, पुत्र, तुम वीर होकर विपत्ति में कातर होते हो। अरे, अब तुम्हीं अकेले हम अंधों के जीवन धन हो। तुझे पाकर हमें राज्य और विजय नहीं चाहिये।

दुर्योधन—माता, ऐसे दीन वचन मत कहिये। सौ पुत्रों के मरने का आपको संताप न हुआ तो फिर मुझ घाती पर इतना मोह क्यों ?

धृतराष्ट्र—(पुत्र को छाती से लगा कर) पुत्र धीरज धरो, और हम अधीरों को धीरज बंधाओ।

दुर्योधन—पिताजी धीरज बंधाने को आपके सौ पुत्र कहाँ से लाऊँ ? नव वैधव्य से दग्ध वधुओं का रुदन कैसे शान्त करूं ? अब तो प्रतिहिंसा ही एक आधार है।

गान्धारी—बहुत हुआ पुत्र, अब युद्ध मत करो। हमारीं अंतिम आशा भंग न करो।

धृतराष्ट्र—मान जाओ पुत्र, अब अंधे माता पिता के पालन के लिये जीते रहो।

दुर्योधन—पिता, अब तो युद्ध के सिवा अन्य उपाय ही नहीं है।

धृतराष्ट्र—पुत्र, युधिष्ठिर से उसी की शर्तों पर संधि कर लो।

दुर्योधन—पिता, कुल नाश होने पर केवल अपने शरीर के मोह से अब संधि कैसी ? दुःशासन के हृदय का रक्त पीने वाले से संधि कैसी ? उस दुरात्मा भीम को गदा से चूर चूर न करूं तो फिर जीवन से क्या लाभ।

गान्धारी—हाय, मेरे सौ पुत्र नहीं जन्मे, सौ दुःख जन्मे।

धृतराष्ट्र—पुत्र, भाग्य हमारे विपरीत है, और तुम्हीं पुत्र शोक दग्धा गान्धारी के जीवनाधार हो।

दुर्योधन—पिताजी, आपके पुत्रों ने पृथ्वी का अकंटक राज्य भोगा, छत्रधारियों के मुकुटों को चरणों में झुकाया। अब वे धर्मयुद्ध में मारे गये। पिता, राजा सगर की भाँति आप पुत्र शोक वहन कीजिये।

गान्धारी-अरे, पुत्र, मुझ भाग्यहीना को कुछ तो धीरज दो।

दुर्योधन—माता, अब तो प्रत्येक श्वास लज्जा और ग्लानि से परिपूर्ण है, माता-पिता विदा। चर, मेरा रथ ला।

धृतराष्ट्र हे आत्माभिमानी, मैं तेरा क्या प्रिय करूं ?

दुर्योधन—पिता, सदा स्नेह से इस पुत्र को स्मरण रखना।

धृतराष्ट्र—प्रिय पुत्र !

दुर्योधन—माता, इस पुत्र हन्ता को क्षमा करना।

गान्धारी—अरे प्रिय दर्शन, मैंने तुझे अपना दूध पिलाया है।

धृतराष्ट्र—पुत्र, किसे सेनापति करोगे, अभिषिक्त शल्य को या अश्वत्थामा को ?

दुर्योधन—नहीं पिता, इन नेत्रों की अश्रुधारा को।

(रथ में बैठ कर जाता है) वृद्ध राजा रानी बैठ कर चिन्ता करते हैं।

दृश्य छठा

स्थान—पाण्डवों का शिविर।

(युधिष्ठिर अर्जुन भीम आदि पाण्डव बैठे हैं)

युधिष्ठिर—अब विजय तो हो ही चुकी, केवल भीम की प्रतिज्ञा ही शेष है।

भीम—वह भी पूरी होगी महाराज।

युधिष्ठिर—सहदेव, दृढ़ प्रतिज्ञ भीम की प्रतिज्ञा से डर कर दुर्योधन कहीं छिप गया है। अतः उसे ढूँढ़ने को चर भेजे जाँय, और घोषणा कर दो कि जो राजा दुर्योधन का पता देगा उसे पुष्कल स्वर्ण पुरस्कार मिलेगा। धीवर जलाशयों के तट पर, ग्वाले वन में और ब्रह्मचारी का वेश धारण करने वाले ऋषियों के आश्रमों में उन्हें ढूंढ़े।

सहदेव—जैसी आज्ञा।

(जाता है, एक चर आता है)

चर—महाराज, दुर्योधन का पता लग गया।

युधिष्ठिर—कहाँ ?

चर—वे व्यास सरोवर के जल में छिपे बैठे हैं। महाराज के प्यादे सूचना लाए हैं।

युधिष्ठिर—(उठते हुऐ) वह जल स्तम्भनी विद्या जानता है। चलो वहीं चल कर उसे पकड़ा जाय।

(सब शस्त्र ले ले कर जाते हैं)

दृश्य सातवां

स्थान—व्यास सरोवर।

(दुर्योधन अश्वत्थामा और कृपाचार्य बातें कर रहे हैं)

अश्वत्थामा—अरे, यह शस्त्रों की झनझनाहट कैसी ? ऐसा प्रतीत होता है कि विजय-मद-मत्त पाण्डव इधर ही आ रहे हैं, आप सावधान हो जाइये।

दुर्योधन—अच्छा, मैं जल स्तम्भ करके सरोवर में बैठता हूँ, आप भी चले जाइये, यहाँ मत ठहरिये।

(सरोवर में छिप जाता है)

(अश्वत्थामा और कृपाचार्य चले जाते हैं

पाण्डव और कृष्ण आते हैं)

युधिष्ठिर—हे वीर सुयोधन, यदि तुम यहाँ छिपे बैठे हो तो बाहर निकल आओ, अनगिनत छत्रधारियों और वंश का नाश करा कर अब छिपने से क्या लाभ ? यह तुम्हारे गर्व-बल, तेज और धर्म को न शोभने योग्य है, अब या तो हमें

मार कर पृथ्वी का राज्य भोगो, या स्वयं मर कर वीर गति प्राप्त करो।

दुर्योधन—(जल में से) अरे पाण्डव, मैं भय से यहाँ नहीं छिपा हूँ। मैं घायल और थकित हूँ, मैं विश्राम कर रहा हूँ। मेरा रथ टूट गया; सारथी आहत हो गया, संगी साथी कोई न रहा, फिर मुझे जीवन का क्या मोह ? बन्धु बान्धवहीन, इष्ट मित्रों से रहित, इस पृथ्वी का राज्य मैं नहीं लेना चाहता। मैं तुम्हें खुशी से राज्य देता हूँ तुम निष्कंटक राज्य भोगो।

युधिष्ठिर—दुर्योधन, इस समय राज्य देने लेने की बात व्यर्थ प्रलाप है। अब तुम पृथ्वी के स्वामी नहीं हो। जब थे तब तो एक सुई के नाके के बराबर भी धरती देने को राजी न थे। अब मैं तुमसे दान में पृथ्वी क्या, तीनों लोकों का राज्य भी लेने को तैयार नहीं हूँ। अब तुम युद्ध करो, जो जीतेगा वही राज्य भोगेगा।

दुर्योधन—मुझे भी अपने भाइयों और गुरुजनों के हत्यारों को विना मारे चैन नहीं है, परन्तु तुम धर्म युद्ध करो, मैं तुममें से किसी एक से गदा युद्ध करूंगा।

युधिष्ठिर—अब तुम धर्म युद्ध की बातें करते हो, पर जब अकेले बालक अभिमन्यु का तुम सात महारथियों ने मिल कर बध किया था तब धर्म युद्ध कहाँ गया था, तो भी हम धर्म युद्ध को तैयार हैं, तुम हममें से जिससे चाहो युद्ध करो, यदि तुम जीते तो राज्य तुम्हारा है।

श्री कृष्ण—(युधिष्ठिर से) यह क्या कह दिया धर्मराज, क्या तुम नहीं जानते कि दुर्योधन ने भीम की लोहे की मूर्ति बना कर उस पर बारह वर्ष गदा युद्ध का अभ्यास किया है। उससे गदा युद्ध में भीम भी नहीं जीत सकता और की तो बात ही क्या।

भीम—अरे आत्मभोगी, झूठे, कृष्णा के केश को खींचने वाले पातकी, धृतराष्ट्र के कुलाङ्गार, यह तेरे प्रिय भाई दुःशासन के हृदय का गर्म रक्त पान करने से प्रदर्पित भीम यहाँ उपस्थित है। कृष्णा के केश बंध चुके और कौरवों की स्त्रियों के खुल रहे हैं। आ बाहर, यह भीम तेरे भूलुण्ठित सिर पर पदाघात करने को उत्सुक है।

दुर्योधन—अरे दुरात्मा नराधम, मैं तेरा ही वक्ष अपनी गदा से तोड़ूंगा। ठहर, मैं यह आया।

(गदा लेकर जल से बाहर आता है)

भीम—याद करले, वारणावत के पाप को, द्रौपदी के अपमान को, जुए के छल को, अपनी गर्वोक्ति को। अरे कुलघाती अब तू ही बचा है, मैं अभी तेरा अभिमान चूर्ण करता हूँ।

दुर्योधन—अरे अधम, जल शून्य मेघ के समान न गरज, अभी गदा मेरे हाथ में है। आ सम्मुख।

(दोनो गदा लेकर आगे बढते है)

(बलराम सहसा आते है)

बलराम—शान्तं पापं, अरे कुलहन्ताओं, कुल नाश को रोको।

युधिष्ठिर—आर्य, अभिवादन करता हूँ।

बलराम—यशस्वी होओ।

श्रीकृष्ण—आर्य, अभिवादन करता हूँ।

बलराम—सुखी रहो कृष्ण।

दुर्योधन—आर्य, अभिवादन करता हूँ।

बलराम—शान्ति पाओ वीर।

भीम—आर्य, अभिवादन करता हूँ।

बलराम—चिरंजीवी रहो, यह क्या हो रहा है?

कृष्ण—यह धर्म युद्ध है दाऊ, भीम और दुर्योधन दोनों में जो जीतेगा उसी पक्ष की विजय मानी जायगी।

बलराम—कृष्ण, तेरे रहते कुरुओं का कुल नष्ट हुआ, यह अब उसकी पूर्णाहुति है।

युधिष्ठिर—महाराज, आप दुर्योधन और भीम दोनों के गदायुद्ध के गुरू हैं, इस युद्ध का निर्णय भी आप ही करें।

बलराम—तो ऐसा ही हो। चलो समन्त पंचक पर। वहीं गदायुद्ध होगा।

सब—बहुत अच्छा। (सब जाते हैं)

दृश्य आठवाँ

स्थान—समन्त पंचक तीर्थ।

(भीम दुर्योधन का गदायुद्ध हो रहा है)

भीम—लेरे पापी, यह तेरे गर्व का उपहार है।

(प्रहार करता है)

दुर्योधन—(प्रहार करके) अरे पेटू, आज तेरे शोणित से भाइयों का तर्पण करूंगा।

भीम—अथवा मर कर यमलोक को जायगा, ले मर।

(प्रहार करता है)

श्रीकृष्ण—(युधिष्ठिर से) धर्मराज, भीम बली है परन्तु दुर्योधन फुर्तीला है। युद्ध निर्णायक होना चाहिये।

युधिष्ठिर—किस प्रकार श्रीकृष्ण ?

श्रीकृष्ण—धर्मयुद्ध में भीम नहीं जीतेगा।

युधिष्ठिर—तब ?

श्रीकृष्ण—आपको याद है धर्मराज, जब इस अधम दुर्योधन ने द्रौपदी का अपमान करके जाँघ दिखा कर कहा था—यहाँ बैठो।

युधिष्ठिर– याद है, तब भीम ने प्रतीज्ञा की थी कि मैं गदा से तेरी जांघ तोड़ूंगा।

श्रीकृष्ण—तो भीम को वह प्रतीज्ञा याद दिलानी चाहिये।

युधिष्ठिर—अभी संकेत करता हूँ।

(संकेत करता है)

भीम—(हुंकार करके) मर रे अधम।

दुर्योधन—मर रे राक्षस। (प्रहार करता है)

भीम—(मौका पा कर जांघ पर गदा मार कर)

मर, मर कौरव कलंक।

(दुर्योधन चीत्कार करके जांघ टूट जाने से गिर पड़ता है। उसका मुकुट उछल कर दूर जा गिरता है।)

बलराम—(क्रुद्ध होकर) अरे दुरात्मा भीम, यह मेरे रहते पाप युद्ध ? कैसे तैने उसकी जाँघ में गदा मारी। अरे अधर्मी, मैं अभी तुझे दण्ड दूंगा।

श्रीकृष्ण—दाऊ, उसकी प्रतिज्ञा थी। प्रतिज्ञा पूर्ति क्षत्रियों का धर्म है। फिर ये पाण्डव हमारे सम्बन्धी हैं। कौरवों ने छल करके इनका सब धन अपहरण कर लिया था। भीम ने द्रौपदी का अपमान होते देख भरी सभा में दुर्योधन की जांघ गदा से तोड़ने की प्रतीज्ञा की थी। आज वही प्रतीज्ञा उसने पूर्ण की है। शास्त्रों में अपनी वृद्धि, अपने मित्र की वृद्धि, अपने शत्रु का क्षय, अपने मित्र के शत्रु का क्षय, ये सभी कार्य समान उन्नति दायक माने गए हैं। बुद्धिमान जब अपनी या अपने मित्र को अवनति अथवा हानि देखते हैं तो उसे अपने लिये अहित कर और दुःख का कारण जान शीघ्र ही उसके प्रतिकार का यत्न करते हैं। पाण्डव हमारे सम्बन्धी, शुभचिन्तक, मित्र और अनुगत हैं, दुर्योधन ने सदा उनके

साथ अन्याय किया, आज पासा पलट गया, पाण्डवों का अभ्युदय हमारा ही अभ्युदय है! आप क्रोध मत कीजिये। इस थोड़े अन्याय को क्षमा कर दीजिये।

बलराम—परन्तु मैं अपनी आँखों यह अनर्थ नहीं देख सकता, मैं जाता हूं।

(क्रोध सहित जाते हैं)

भीम—(हर्षित होकर और दुर्योधन के सिर में लात मार कर) लेरे अभिमानी, आज हमारे सब बैरों का चुकता हो गया। अब देख, इस प्रकार हम शत्रु के सिर पर पैर रख कर राज्य जय करते हैं।

युधिष्ठिर—(रोते हुऐ) नहीं भीम, यह उचित नहीं। मृतः प्राय शत्रु को कठोर वचन कह कर दुःखी करना उचित नहीं। यह कुरुराज ग्यारह अक्षोहिणी सेना का स्वामी और सम्पूर्ण भरतखण्ड का एक छत्र राजा था, (दुर्योधन से लिपट कर) भाई, भाग्य दोष से ही तुम्हें कुबुद्धि सूझी, इस प्रकार कुल नाश हुआ। हाय कैसी शोचनीय तुम्हारी दशा हो गई?

दुर्योधन—(कुहनी के सहारे ऊपर उठने की चेष्टा करता हुआ) युधिष्ठिर, शोचनीय दशा मेरी नहीं तुम्हारी है। मैं जब तक जिया-शत्रु के सिर पर पैर रख कर, मेरे भय से मेरे शत्रु वन २ मारे २ फिरे, उनकी बड़ी ही दुर्दशा रही। वे दास बने, उनकी स्त्री दासी बनी, शत्रु ने छल बल से कुल नाश किया और अधर्म युद्ध में मुझे मारा। अब मैं वीर गति को प्राप्त होकर स्वर्ग जा रहा हूँ; दिव्य सुख भोगने, और तुम अब पुत्र परिजनों से हीन, विधवा वधुओं के आंसुओं से भीगे हुए, हाहाकार से भरे हुए इस कलंकित रक्त सने राज्य को भोग करो।

श्रीकृष्ण—दुर्योधन, बृहस्पति और शुक्र का मत है कि शठ से शठता करना अनुचित नहीं, अपितु कर्त्तव्य है। छल कौशल से शत्रु को मारने में दोष नहीं है। पूर्व समय मे देवगण और धर्मात्मा राजाओं ने कौशल और कूटनीति से ही शत्रुओं का नाश किया था।

दुर्योधन— हे कंस के दास के पुत्र, तुझे धिक्कार है। यह सब तेरी ही कूटनीति का फल है। अरे अभागे, तू कैसे भगवती गान्धारी के श्राप से अपनी रक्षा करेगा।

भीम—अब इन पाप वचनों से क्या? चलूं द्रौपदी को प्रण यज्ञ पूर्ण होने का शुभ संदेश दूँ। (जाता है)

(सब जाते हैं)

दृश्य नवमा

(स्थान—हस्तिनापुर के शिविर का अंत पुर—व्यास, धृतराष्ट्र और गान्धारी शोक से तप्त है 'कृष्ण उन्हें सान्त्वना दे रहे हैं')

श्रीकृष्ण—महाराज, आप यदि अब धैर्य धारण न करेंगे तो कौन करेगा। आप समुद्र के समान गम्भीर और मर्यादा सिन्धु हैं।

धृतराष्ट्र—वासुदेव, हमारा एक पुत्र भी तो जीवित न रहा।

गान्धारी—अरे, अब इन बूढ़े अन्धे जनों को दीर्घ जीवन का फल मिलेगा।

श्रीकृष्ण—माता, अब पाण्डवों को ही अपना पुत्र समझिये, वे सब आप पर श्रद्धा करते हैं। आपके आधीन हैं। जैसे होगा आपको संतुष्ट रखेंगे। वे दुर्योधन से युद्ध करके पछता

रहे हैं, और लज्जा तथा ग्लानि के मारे आपके सामने नहीं आ रहे।

गान्धारी—अरे कृष्ण, मेरा माता का हृदय फटता भी नहीं।

श्रीकृष्ण—माता, आपके समान तपस्विनी, बुद्धिमती गुणवती स्त्री त्रिलोक में नहीं है। आपकी बात न मान कर ही दुर्योधन की यह दुर्दशा हुई। अब आप समय को देख पाण्डवों पर कृपा दृष्टि रखिये। इन्हें अपनाइये।

गान्धारी—(भरे गले से) कृष्ण, दारुण पुत्र शोक से मेरी बुद्धि विचलित हो गई है। अच्छा हुआ तुम आगये। नहीं तो पाण्डवों का अनिष्ट होता। अब हम लोगों का भार वीर पाण्डवों पर ही तो है।

(बिलख बिलख कर रोती है—कुछ रुक कर)

कृष्ण, जाओ तुम शीघ्र, पाण्डवों को सावधान कर दो। अश्वत्थामा ने आज रात सब पाण्डवों को मार डालने की प्रतिज्ञा की है।

कृष्ण—तो मैं जाकर उन्हें सावधान करता हूँ। यथा समय वे आपकी सेवा में अभिवादन करने आवेंगे।

धृतराष्ट्र—कृष्ण, अब हमारा क्या होगा?

कृष्ण—यह महर्षि व्यास विराजमान हैं, इनसे बढ़ कर मार्ग दर्शक कौन हो सकता है।

व्यास—राजन्, पाण्डवों को पुत्रवत् पालन करके धर्म की मर्यादा लोक में स्थापित करो।

धृतराष्ट्र—जैसी आज्ञा ऋषिवर। (आंसू पोंछते हैं)

(सब जाते हैं)

❀ समाप्त ❀

کتب خانہ

جامعہ عثمانیہ

[illegible]

۱۔ [illegible]

۲۔ [illegible]

۳۔ [illegible]

۴۔ [illegible]

[illegible]